तंत्र सिद्धान्त सार

(सर्वोपयोगी तंत्र सिद्धान्त और विधान का सप्रमाण निरूपण)

गुरु-शिष्य- विचार

१. गुरु- लक्षण

शान्त, दान्त, कुलीन, विनीत, शुद्ध-वेष-सम्पन्न, विशुद्धाचार, सुप्रतिष्ठ, पवित्र स्वभाव, कार्य- दक्ष, सु- बुद्धिमान्, आश्रमी, ध्यान-निष्ठ तन्त्र मन्त्र - विशारद, निग्रहानुग्रह में समर्थ व्यक्ति ही 'गुरु' रूप में माननीय है। 'आगम - संहिता' में लिखा है कि मन्त्र दानादि द्वारा उद्धार और शापादि द्वारा विनाश करने में समर्थ, तपस्वी, सत्य - वादी और गृहस्थ ब्राह्मण ही 'गुरु' बनाने योग्य है।

२. गुरु- माहात्म्य

'ज्ञानार्णव' में लिखा है कि 'गुरु' को मनुष्य, 'मन्त्र' को अक्षर और 'प्रतिमा' को शिला समझनेवाला नरकगामी होता है। माता-पिता जन्म दाता होने से पूज्य हैं, यह सत्य है, किन्तु धर्माधर्म के दिखानेवाले गुरु देव उनसे भी अधिक पूज्य हैं । गुरु ही पिता, माता, देवता और एक मात्र शरण हैं। शिव के रुष्ट होने पर गुरु बचा सकते हैं, किन्तु गुरु के रुष्ट होने पर कोई नहीं बचा सकता । शरीर, मन, वचन और कर्म द्वारा गुरु का हित करे; उनका अनिष्ट करने से विष्ठा में कृमि-रूप से जन्म लेना पड़ता है । पिता शरीर दाता हैं, किन्तु गुरु ज्ञान-दाता हैं, दुःख-मय संसार-सागर में गुरु से श्रेष्ठ कोई नहीं है। गुरु - मुख से निकला हुआ शब्द - मय पूर्ण ब्रह्म निश्चय ही नरक से बचाता है । मन्त्र -त्याग से मृत्यु, गुरुत्याग से दरिद्रता और गुरु तथा मन्त्र – इन दोनों के त्याग से नरकवास होता है । गुरु-पुत्र और पौत्रादि के प्रति गुरु-

वत् पूज्य भाव रखे और उनकी बात पूरी कर उन्हें सन्तुष्ट करे। गुरु को आता देख आगे जाकर स्वागत करे, जाता देख उनके पीछे-पीछे चले, किन्तु उन्हें बैठा या सोया देख उनके सामने न बैठे; गुरु की अनुमति से ही बैठना चाहिए।

३. निन्द्य-गुरु-लक्षण

' यामल' में लिखा है कि रोगी, पुत्र-हीन, वामन, धूर्त, क्रिया हीन, गुरु - निन्दक और द्वेषी व्यक्ति गुरु बनाने योग्य नहीं है।

४. शिष्य- लक्षण

शान्त, विनीत, शुद्धात्मा, श्रद्धालु, मेधावी, सब कार्यों में चतुर, कुलीन, सच्चरित्र आदि गुण सम्पन्न व्यक्ति को ही शिष्य बनाना चाहिए, जो धार्मिक, गुरु भक्त और जितेन्द्रिय हो।

५. निषिद्ध शिष्य-लक्षण

पापी, क्रूर कर्मा, शठ, कृपण, आचारहीन, निन्दक, मूर्ख, तीर्थ-द्वेषी, आलसी, दम्भी, रोगी, भोगेच्छु, कठोर भाषी, अन्याय से धन कमानेवाला, पर-दार रत, ₹ पाण्डित्य अभिमानी, भ्रष्टाचारी, बहु- भोजी इत्यादि दोष युक्त व्यक्ति को शिष्य न बनाना चाहिए ।

६ गुरु-शिष्य - सम्बन्ध

गुरु और शिष्य एक वर्ष तक साथ रहें; फिर परीक्षा करने के बाद गुरु या शिष्य बनावें । स्वप्न में प्राप्त मन्त्र के लिए कालादि नियम नहीं हैं ।

'सार - संग्रह' में लिखा है कि जैसे मन्त्री - कृत दोष 'राजा को और पत्नी - कृत पाप पति को लगता है, वैसे ही शिष्यार्जित पाप निश्चय ही गुरु को लगता है। ब्राह्मण एक वर्ष, क्षत्रिय दो वर्ष, वैश्य तीन वर्ष और शूद्र चार वर्ष तक गुरु के साथ रहे, तब उसमें शिष्य की योग्यता आती है ।

'मन्त्र' का वर्ण देवता - स्वरूप है और 'देवता' है गुरु-रूपिणी; अतः मन्त्र, देवता और गुरु-इन तीनों में भेद न करना चाहिए ।

'देव्यागम' में लिखा है कि गुरु की शय्या, आसन, वाहन, पादुका, उपानह, पाद- पीठ, स्नान-जल और छाया को न लाँघे । गुरु के सामने अन्य पूजा, औद्धत्य, दीक्षा - शास्त्र की व्याख्या और प्रभुत्वप्रदर्शन न करे । 'रुद्रयामल' में लिखा है कि शिष्य को गुरु से ऋण का आदानप्रदान या क्रय-विक्रय न करना चाहिए ।

'नित्यानन्द तन्त्र' में लिखा है कि यदि गुरु उसी नगर या ग्राम में हों, तो शिष्य तीनों सन्ध्याओं में जाकर उन्हें प्रणाम करे; एक कोस के भीतर हों, तो दिन में एक बार, अर्ध - योजन के भीतर हों, तो पञ्च - पर्वों – १ अष्टमी, २ चतुर्दशी, ३ अमावास्या, ४ पूर्णिमा और ५ संक्रान्ति में, एक से बारह योजन के भीतर हों, तो योजनसंख्यक महीनों के बाद जाकर उन्हें प्रणाम करे। यदि इससे भी दूर - रहते हों, तो

वर्ष में दो बार अर्थात् एक बार उत्तरायण में और एक बार दक्षिणायन में जाकर गुरु देव की वन्दना कर आवे ।

७ 'गुरु' - शब्दार्थ

'तन्त्रार्णव' में लिखा है कि 'ग' - कार सिद्धिदाता, 'रेफ' पाप-दाहक, 'उ'- कार स्वयं शिव - यह त्रितयात्मक - गुरु सर्व श्रेष्ठ है । अथवा 'ग' -कार ज्ञान एवं सम्पत्-प्रद, 'रेफ' पाप-दाहक और 'उ' - कार शिव-स्वरूपत्व- प्रद । अथवा 'गु' माने अन्धकार, 'रु' उसे दूर करनेवाला अर्थात् 'गुरु' माने अन्धकार को दूर करनेवाला ।

८. गुरु - विचार -

'रुद्रयामल' में लिखा है कि पति पत्नी को, पिता पुत्र और कन्या को तथा भाई सहोदर को दीक्षा न प्रदान करे । पति यदि मन्त्र - सिद्ध हो, तो वह पत्नी को दीक्षा दे सकता है,

किन्तु पत्नी के प्रति पुत्रिका - वत् व्यवहार न कर उसे शक्ति - रूप में ग्रहण करना होगा ।

'शक्ति - यामल' में लिखा है कि तीर्थाचार-युक्त, मन्त्र-तन्त्र - विशारद, ज्ञानी, संयतेन्द्रिय और नित्य कार्य - रत यति को भी गुरु बनाया जा सकता है ।

'सिद्ध - यामल' में लिखा है कि भाग्यवश यदि सिद्ध-विद्या प्राप्त होती हो, तो गुरु का विचार किए बिना तुरन्त दीक्षा ले ले । यदि कोई अज्ञान - वश पिता, मातामह आदि से दीक्षित हुआ हो, तो गायत्री के दश हजार जप - द्वारा प्रायश्चित्त कर उसे पुनः दीक्षा लैनी चाहिए ।

'मत्स्य सूक्त' में लिखा है कि पिता से प्राप्त मन्त्र निर्वीर्य होता है, किन्तु यह बात शिव और शक्ति मन्त्रों पर लागू नहीं होती। कौलाचार विहित दीक्षा में पिता से भी मन्त्र लिया जाता है, अन्यत्र नहीं - 'श्री-क्रम' में लिखा है कि गङ्गा, काशी आदि तीर्थ क्षेत्र में और चन्द्र - सूर्य ग्रहण के समय

पिता आदि से दीक्षित होने में कोई दोष नहीं है । जितेन्द्रिया, गुरु भक्ता, साध्वी, सदाचारा, सर्व- मन्त्रार्थ- विशारदा, सुशीला, पूजादि में अनुरागिणी स्त्री को गुरु बनाना चाहिए, किन्तु इन गुणों से युक्त होने पर भी विधवा स्त्री गुरु बनाने योग्य नहीं है । स्त्री-गुरु से दीक्षा लेने से शुभ फल मिलता है और माता से उनके उपासित मन्त्र की दीक्षा पाने से अठ-गुना फल होता है।

'भैरवी तन्त्र' में लिखा है कि अपने द्वारा उपासित मन्त्र का उपदेश होने पर गुरु विचार की आवश्यकता नहीं होती। विधवा स्त्री पुत्र की अनुमति से, कन्या पिता की आज्ञा से और सधवा स्त्री पति की आज्ञा से ही दीक्षा कार्य की अधिकारिणी होती है। गर्भवती स्त्री से दीक्षा लेने में दोष नहीं है, किन्तु दसवें मास में दीक्षा लेने से नरक होता है । 'कुल चूड़ामणि' में लिखा है कि उदासीन उदासीन को, वन-वासी वन-वासी को, यति यति को, गृहस्थ गृहस्थ को, वैष्णव वैष्णव को एवं शैव शेव को गुरु बनावे । शक्ति-

दीक्षा में शाक्त, वैष्णव और शैव- तीनों दीक्षा - कर्त्ता हो सकते हैं, इसमें सन्देह नहीं । स्वप्न में प्राप्त मन्त्र को सद् गुरु से पुनः ग्रहण करना चहिए | सद् गुरु का अभाव होने पर जल-पूर्ण कलश में गुरु की प्राण प्रतिष्ठा कर वटपत्र में कुमकुम से मन्त्र लिखे और उक्त कलश के जल में इस पत्र को डाल दे । फिर उक्त वट - पत्र सहित मन्त्र को ऊपर उठाते हुए स्वयं उस मन्त्र को ग्रहण करे। इससे मन्त्र की सिद्धि होती है, अन्यथा वह निष्फल रहता है ।

दीक्षा प्रकरण

१ .दीक्षा की आवश्यकता

'दीक्षा' के बिना मन्त्र जप दूषित होता है । 'दीक्षा' से दिव्य ज्ञान - लाभ और पाप-क्षय होता है; इसी से उसका नाम 'दीक्षा' है । सभी आश्रमों में दीक्षा आवश्यक है क्योंकि

जप, तपादि कार्यों की मूल 'दीक्षा' ही है । अतः किसी भी आश्रम में हूं।, 'दीक्षा' का आश्रय लेना ही पड़ता है। 'दीक्षा' - विहीन व्यक्ति को सिद्धि और सद्गति नहीं मिलतीं; मृत्यु होने पर उसे नरक - वासी होना पड़ता है और प्रेतत्व से उसका छुटकारा नहीं होता । अतएव यत्न करके 'दीक्षा' लेनी चाहिए ।

'नव- रत्नेश्वर' में लिखा है कि सभी प्रकार की 'दीक्षा' से मुक्ति मिलती है और साथ ही भोग भी सम्पन्न होता है । यथा विधि 'दीक्षा' लेने से असंख्य पाप तुरन्त ही भस्म हो जाते हैं। गुरु के पास न जाकर जो ग्रन्थ में देखकर मन्त्र जप करता है, उसकी सहस्र मन्वन्तर तक सद्गति नहीं होती । अदीक्षित व्यक्ति का कोई भी कार्य तपस्या, व्रत, नियम, तीर्थ यात्रा एवं शारीरिक परिश्रम से सिद्ध नहीं होता । अदीक्षित द्वारा एवं अदीक्षित के हेतु किया गया श्राद्ध अध: - कृत होता है । अतएव सद् गुरु से दीक्षा लेना परमावश्यक है ।

२. शूद्र दीक्षा में निषिद्ध मन्त्र

प्रणव और प्रणव घटित मन्त्र शूद्र को प्रदान न करे । जो ब्राह्मण आत्म-मन्त्र, गुरु- मन्त्र, अजपा - मन्त्र (हंस), स्वाहा और प्रणव- संयुक्त मन्त्र शूद्र को देता है, उसकी अधोगति होती है और उसके साथ शूद्र भी नरक -गामी होता है । 'श्रुति' में लिखा है कि वैदिक गायत्री, प्रणव एवं लक्ष्मी - मन्त्र (श्री) स्त्री और शूद्र के लिए निषिद्ध हैं । 'वाराही तन्त्र' में लिखा है कि शूद्र को गोपाल, महेश्वर, दुर्गा, सूर्य एवं गणेश के मन्त्र ग्रहण करने का ही अधिकार है, अन्य मन्त्र उसको निषिद्ध हैं ।

३.मन्त्र - विचार

जिन-जिन मन्त्रों के ग्रहण करने का अधिकार हो, उन्हीं में से अनुकूल मन्त्र ग्रहण करना चाहिए। इसके मनन (स्मरण,

उच्चारणादि) से संसार से उद्धार होता है, इसी से इसका नाम 'मन्त्र' है ।

'सिद्ध सारस्वत' में लिखा है कि नृसिंह, सूर्य, वराह के मन्त्र और प्रासाद वीज (हौं), प्रणव एवं कूट- मन्त्र (ठौं वीज-घटित मन्त्र) के सम्बन्ध में सिद्धादि मन्त्र - विचार नहीं करना पड़ता

'वाराही - तन्त्र' में लिखा है कि सगुण मन्त्रों के सम्बन्ध में 'ताराचक्र', 'राशि चक्र' और 'नाम चक्र' (ऋण धनि चक्र) का मुख्यतः विचार करना होता है । 'धनी' और 'अकुल' मन्त्र ग्रहण न करना चाहिए । अतः 'ऋणि धनि' तथा 'कुलाकुल- चक्र' का विचार आवश्यक है । स्वप्न में प्राप्त मन्त्र, स्त्री से लिए मन्त्र, त्यक्षर मन्त्र, कालीमन्त्र, तारा- मन्त्र, छिन्नमस्ता मन्त्र और सभी प्रकार के वैदिक मन्त्रों के विषय में सिद्धादि विचार न करे। जिस मन्त्र के अन्त में 'हूँ फट् हो,

वह पुं- मन्त्र; जिसके अन्त में 'स्वाहा' हो, वह स्त्री-मन्त्र और जिसके अन्त में ‘नमः’ हो, उसे नपुंसक मन्त्र कहते हैं। महाविद्या इन सबसे रहित है, इसी से उसे 'महा' कहा गया है।

' मालिनी विजय' में लिखा है कि काली, नीला, महा दुर्गा, त्वरिता, छिन्नमस्ता, वाग्वादिनी, अन्नपूर्णा, प्रत्यङ्गिरा, कामाख्यावासिनी, बाला, मातङ्गी और शैल-वासिनी आदि देवता कलि-काल में में पूर्ण - फल- दाती हैं । इन देवताओं की आराधना के सम्बन्ध युगनियम नहीं हैं। ये सभी सिद्ध मन्त्र हैं ।

'मुण्ड - माला तन्त्र' में लिखा है कि काली, तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्नमस्ता, धूमावती, बगला, मातङ्गी और कमला इन दश महा - विद्याओं के मन्त्र ग्रहण करने से सिद्धादि - विचार, नक्षत्र - चक्रादि - विचार, कालादि - शोधन और अरि - विचार की आवश्यकता नहीं । ये सिद्ध विद्याएँ हैं। इनकी उपासना से कुछ भी दु:साध्य नहीं रहता।

साम्प्रदायिकों के मत से उक्त वचन प्रशंसा - परक मानकर सभी मन्त्रों के सम्बन्ध में मन्त्र - विचार करना चाहिए। उदाहरणार्थं स्वप्न में प्राप्त मन्त्र के लिए ऊपर बताया है कि विचार न करे, परन्तु दुर्दैव होने से स्वप्न में शत्रु-मन्त्र भी प्राप्त हो सकता है । अत: विचार सर्वत्र अवश्य करे ।

४. कुलाकुल- चक्र

इस चक्र के अनुसार यदि मन्त्र लेनेवाले व्यक्ति के नाम का पहला अक्षर और ग्रहण किए जानेवाले मन्त्र का आदि - अक्षर एक भूत हों अर्थात् दोनों एक ही कोष्ठक में हों, तो उस मन्त्र को 'स्व-कुल' समझे अन्यथा 'अकुल' । 'स्व-कुल' मन्त्र शुभ होता है । एक भूत न होकर यदि उपर्युक्त दोनों अक्षर परस्पर मित्र हों, तो भी वह मन्त्र शुभ समझना चाहिए। मित्र शत्रु की पहचान के लिए यह स्मरणीय है कि जल-वर्ण आकाश-वर्ण के और वायु वर्ण अग्निवर्ण के मित्र हैं । वायु-वर्ण भु-वर्ण के और अग्नि- वर्ण जल-वर्ण तथा

कुलाकुल-चक्र

वायु	अग्नि	भूमि	जल	आकाश
अ आ	इ ई	उ ऊ	ऋ ॠ	लृ ॡ
ए	ऐ	ओ	औ	अं
क	ख	ग	घ	ङ
च	छ	ज	झ	ञ
ट	ठ	ड	ढ	ण
त	थ	द	ध	न
प	फ	ब	भ	म
य	र	ल	व	श
ष	क्ष	ळ	स	ह

भू-वर्ण के शत्रु हैं । आकाश - वर्ण सब वर्णों के मित्र हैं । शत्रुमन्त्र ग्रहण न करे ।

'रुद्र - यामल' में लिखा है कि जल-वर्ण भू-वर्ण का मित्र है और वायु-वर्ण का शत्रु । मित्र वर्ण होने से सिद्धि प्राप्ति और शत्रु वर्ण होने से व्याधि तथा मृत्यु होती है ।

उदाहरणार्थ रमापति को 'ईशान' मन्त्र लेना है । अब ' रमापति' इस नाम का पहला अक्षर 'र' और मन्त्र का आदि अक्षर 'ई'-ये दोनों ही अग्नि के कोष्ठक में हैं, अतएव एक भूत हुए और रमापति के लिए ईशान का मन्त्र 'स्व-कुल' अर्थात् शुभ सिद्ध हुआ । इसी प्रकार यदि रमापति को 'हर' मन्त्र लेना हो, तो 'र' का दैवत अग्नि है और 'ह' का आकाश ये दोनों भूत परस्पर मित्र हैं । अतएव रमापति 'हर' मन्त्र को भी ले सकता है ।

५.राशि चक्र

इस चक्र से पहले मन्त्र की और यदि अपनी जन्म राशि ज्ञात न हो, तो अपने नाम के आदि अक्षर से अपनी भी - राशि निश्चित करे। फिर अपनी राशि से मन्त्र की राशि तक गिन कर फलाफल जान लेना चाहिए।

'तन्त्र राज' में लिखा है कि यदि मन्त्र राशि अपनी राशि से छठे, आठवें या बारहवें में पड़े, तो उसे रिपु-मन्त्र समझे। उसे लेने से अमङ्गल होगा।

यदि पहले, पाँचवें या नवें में पड़े, तो उसे हितकारी समझे। तीसरे, सातवें या ग्यारहवें में होने से उसे पुष्टि कर समझे तथा चौथे, आठवें या बारहवें में हो, तो घातक माने।

६.नक्षत्र- चक्र

इस चक्र से विचार करते समय मन्त्र लेनेवाले का जन्म-नक्षत्र और मन्त्र का आदि-वर्ण जिस कोष्ठक में हो, उसमें स्थित नक्षत्र को लेकर गणना करे । यदि जन्म नक्षत्र ज्ञात न हो, तो नाम के पहले अक्षर से अपना नक्षत्र 'नक्षत्र चक्र' से निश्चित कर ले।

नक्षत्र-चक्र

अश्विनी	भरणी	कृत्तिका	रोहिणी	मृगशिरा	आर्द्रा	पुनर्वसु	पुष्य	आश्लेषा
अ आ	इ	ई उ ऊ	ऋ ॠ ऌ ॡ	ए	ऐ	ओ औ	क	ख ग
देव	नर	राक्षस	नर	देव	नर	देव	देव	राक्षस
मघा	पूर्वा फाल्गुनी	उत्तरा फाल्गुनी	हस्ता	चित्रा	स्वाती	विशाखा	अनुराधा	ज्येष्ठा
घ ङ	च	छ ज	झ ञ	ट ठ	ड	ढ ण	त थ द	ध
राक्षस	नर	नर	देव	राक्षस	देव	राक्षस	देव	राक्षस
मूल	पूर्वाषाढ़ा	उत्तराषाढ़ा	श्रवणा	धनिष्ठा	शतभिषा	पूर्वा भाद्रपद	उत्तरा भाद्रपद	रेवती
न प फ	ब	भ	म	य र	ल	व श	ष स ह	ळ क्ष अं अः
राक्षस	नर	नर	देव	राक्षस	राक्षस	नर	नर	देव

स्व-जाति से परम प्रीति होती है, भिन्न जाति से मध्यम प्रीति, राक्षस और मनुष्य से विनाश तथा राक्षस एवं देवगुण से शत्रुता होती है । अतः 'मनुष्य-गण' के लिए 'मनुष्य-गण' का ही मन्त्र श्रेष्ठ है, 'देव-गण' का भी उत्तम है परन्तु 'राक्षस गण' का मन्त्र घातक है । 'देव-गण' के लिए 'मनुष्य-गण' का मन्त्र मध्यम है और 'राक्षस गण' का शत्रु है । 'राक्षस गण' के लिए

केवल 'राक्षस गण' का ही मन्त्र ठीक है। इस प्रकार विचार कर अपने नक्षत्र से मन्त्र के नक्षत्र -तक गिने । फल इस प्रकार जाने – १ जन्म, २ सम्पत्, ३ विपत्, ४ क्षेम, ५ प्रत्यरि, ६ साधक, ७ वध, ८ मित्र और ६ परम मित्र । यदि इतनी संख्या के भीतर मन्त्र का नक्षत्र न आए, तो इसी को दुबारा और तिवारा गिन ले। १ जन्म, ३ विपत, ५ प्रत्यरि और ७ वध में पड़नेवाले मन्त्र त्याज्य हैं । गणना 'प्रदक्षिणा क्रम' से करे ।

७ . अकथह चक्र

इस चक्र के प्रथम कोष्ठ में 'अ क थ ह' ये चार वर्ण हैं। इसी से इसका नाम ' अकथह चक्र' है । मन्त्र लेनेवाले के नाम

अकथह चक्र

१ अ क थ ह	२ उ ङ प	३ आ ख द	४ ऊ च फ
५ ओ ड ब	६ ऌ झ म	७ औ ढ श	८ ॡ ञ य
९ ई घ न	१० ॠ ज भ	११ इ ग ध	१२ ऋ छ व
१३ अः त स	१४ ऐ ठ ल	१५ अं ण ष	१६ ए ट र

के पहले अक्षर से प्रारम्भ कर मन्त्र के दक्षिणावर्त से गणना करे। फल इस प्रकार २ साध्य, ३ सुसिद्ध, ४ अरि। 'सिद्ध - मन्त्र' यथा होता है; 'साध्य - मन्त्र' जप - होमादि द्वारा सिद्ध मन्त्र' तुरन्त सिद्धि-दायी है और 'अरि-मन्त्र' से - समय स्वयं सिद्ध होता है; 'सु-सिद्ध वंश - नाश होता है।'अरि-मन्त्र' ग्रहण न करे। भ्रमवश यदि किसी ने 'अरि-मन्त्र '। ग्रहण कर लिया हो, तो उसके छोड़ने की विधि यह है कि एक द्रोण (एक दोना) गो- दुग्ध के ऊपर, एक सौ आठ बार उसी 'अरि-मन्त्र ' का जप कर उस दूध का पान कर जाए उस मन्त्र का फिर एक सौ आठ बार जप कर मन्त्रोच्चारण- पूर्वक उद्धार कर, उस दूध का परित्याग करे। इस प्रकार उस मन्त्र को छोड़कर, उसी देवता के अन्य मन्त्र को ग्रहण करे। 'रुद्र - यामल' में लिखा है कि 'वट पत्र' में मन्त्र लिखकर उसे स्रोत- जल में डालकर 'अरि-मन्त्र' का त्याग करे।

८. अकडम चक्र

इस चक्र में मन्त्र लेनेवाले के नाम के पहले अक्षर से लेकर
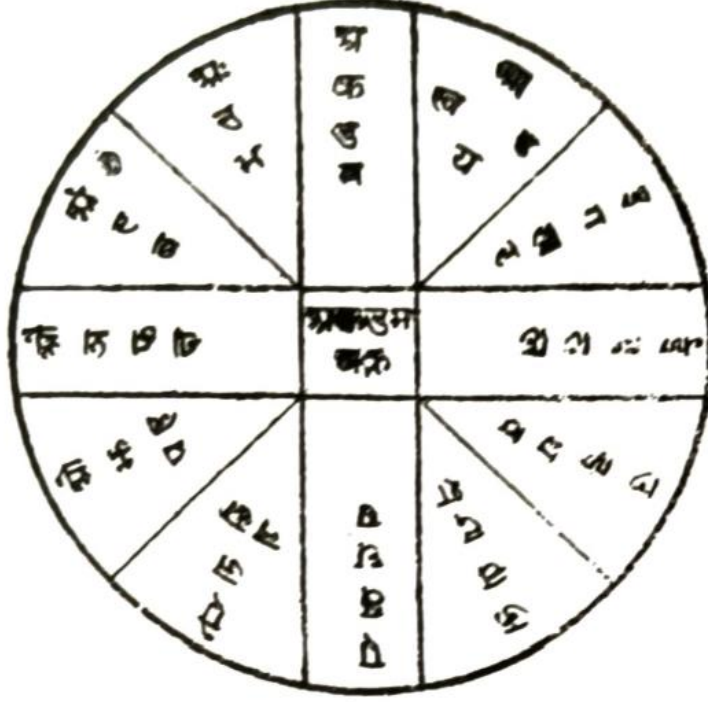
मन्त्र के आदि वर्ण तक सिद्ध, साध्य, सुसिद्ध और अरि इस क्रम से दक्षिणावर्त से गणना करे। 'अरि मन्त्र' ग्रहण न करे।'वाराही-तन्त्र' के अनुसार वैष्णव 'नक्षत्र चक्र', शेव 'अकडम', त्रिपुरोपासक 'राशि चक्र' और गोपाल- विषय में 'अकडम चक्र' का विचार करे। 'यामल' में लिखा है कि विष्णु मन्त्र के सम्बन्ध में राशि चक्र और शिव-विषय में अकडम चक्र का विचार करे।

ऋणि धनि-चक्र-

ऋणि-धनि चक्र

मन्त्राङ्क

६	६	६	०	३	४	४	०	०	०	३
अआ	इई	उऊ	ऋॠ	ऌॡ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः
क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट
ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ
ब	भ	म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह
२	२	५	०	०	२	१	०	४	४	१

साधकाङ्क

इस चक्र के उपरि-भाग में ६, ६, ६,०, ३ आदि जो अङ्क हैं, वे साध्याङ्क हैं और निम्न भाग में २,२,५, ०, ० आदि अङ्क साधकाङ्क हैं । इस चक्र से विचार करने के लिए मन्त्र के स्वर और व्यञ्जन वर्ण अलग-अलग कर, उनमें से प्रत्येक के अङ्क चक्र से जानकर जोड़ ले । इसी प्रकार मन्त्र लेनेवाले के नाम से स्वर और व्यञ्जन वर्णों के अङ्क जानकर, उन्हें जोड़ ले। अब इन दोनों योग-फलों में अलग-अलग ८ से भाग दे । यदि मन्त्र का शेष अधिक हो, तो वह 'ऋणी' माना जाता है और यदि कम हो, तो 'धनी' । ऋणी मन्त्र से बहुत शीघ्र ही सिद्धि मिलती है । दोनों का शेष बराबर तो भी मन्त्र उत्तम होता है। 'धनी मन्त्र' से सिद्धि देर में मिलती है । यदि शेष में शून्य रहे, तो उस मन्त्र को मृत्युकारी समझना चाहिए ।

१०.दीक्षा से पूर्व

जिस दिन दीक्षा होनेवाली हो, उसके पहले दिन गुरु शिष्य को बुलावे और पवित्र कुशासन पर उसे बैठाकर **'ॐ हिलि हिलि शूलपाणये स्वाहा'** इस निद्रा मन्त्र से शिष्य का 'शिखा - बन्धन' करे । फिर शिष्य भी सोते समम इसी बार उच्चारण कर उपवासी और जितेन्द्रिय रहकर, श्रीगुरु पादुका का ध्यान करते हुए, कुश की शय्या पर शयन करे । अन्य मन्त्र भी हैं । यथा - सोते समय शिष्य यह 'प्रार्थना' करे—

नमो जय त्रिनेत्राय, पिङ्गलाय महात्मने ।

रामाय विश्व - रूपाय, स्वप्राधिपतये नमः ॥

स्वप्ने कथय मे तथ्यं, सर्व कार्येष्वशेषता ।

क्रिया-सिद्धि विधास्यामि, त्वत्प्रसादान् महेश्वर ॥

'स्वप्न' में शुभाशुभ दिखाई पड़ने पर शिष्य प्रातः काल गुरु से उसके सम्बन्ध में पूछे । **स्वप्न में यदि हाथी, बैल, माला, समुद्र, सूर्य, सर्प, वृक्ष, पर्वत, अश्व, पवित्र द्रव्य, आम, मांस, सुरा, आसव आदि दिखाई पडे, तो सिद्धि मिलती है ।**

११. दीक्षा - काल

'गौतमीय-तन्त्र' में लिखा है कि चैत्र मास में दीक्षा लेने से पुरुषार्थ - लाभ, वैशाख में रत्न - लाभ ज्येष्ठ में मृत्यु, आषाढ़ में बन्धु-नाश, श्रावण में पूर्णायु प्राप्ति, भाद्र में प्राण-नाश, आश्विन में रत्न - सञ्चय, कार्तिक और मार्गशीर्ष में मन्त्र सिद्धि, पौष में शत्रु पीड़न, माघ में मेधा - वृद्धि तथा फाल्गुन में दीक्षा लेने से सब कामनाएँ पूरी होती हैं। मल मास में दीक्षा लेना मना है । 'योगिनी तन्त्र' में लिखा

है कि चैत्र में केवल गोपाल का मन्त्र ग्रहण करना चाहिए, अन्य मन्त्र लेने से दुःख और मृत्यु - भय होता है । 'वैशम्पायन संहिता' में लिखा है कि 'मेष' में मन्त्र लेना धनधान्य-प्रद, 'वृष' में मृत्यु, 'मिथुन' में अपत्य - नाश, 'कर्कट' में मन्त्रसिद्धि, 'सिंह' में मेधा - नाश, 'कन्या' में श्री - लाभ, 'तुला' में सर्व सिद्धि, 'वृश्चिक' में स्वर्ण - लाभ, 'धनु' में मान हानि, 'मकर' में पुण्य-लाभ, 'कुम्भ' में धन-समृद्धि और 'मीन' में मन्त्र-ग्रहण करने से दुःख की प्राप्ति होती है।

१२ दीक्षा दिवस

'रवि वार' में दीक्षा लेने से धन लाभ, ‘सोम-वार' में ‘शान्ति’, ‘मङ्गल' में आयुर्नाश, 'बुध' में सौन्दर्य - लाभ, 'वृहस्पति' में ज्ञान - लाभ, 'शुक्र' में सौभाग्य- लाभ और 'शनि - वार' में दीक्षा लेने से यशो-हानि होती है ।

१३. दीक्षा तिथि

'आगम - कल्पद्रुम' में लिखा है कि 'प्रतिपदा' में ज्ञान-नाश, 'द्वितीया' में ज्ञान - लाभ, 'तृतीया' में पवित्रता, 'चतुर्थी' में धन-नाश, 'पञ्चमी' में बुद्धि- वृद्धि, ' षष्ठी' में ज्ञान - क्षय, 'सप्तमी ' में सुख, 'अष्टमी' में बुद्धि-नाश, 'नवमी' में देह-क्षय, 'दशमी' में राजसौभाग्य, 'एकादशी' में पवित्रता लाभ, 'द्वादशी' में सर्व-शुद्धि, 'त्रयोदशी' में दरिद्रता, 'चतुर्दशी' में तिर्यग्योनित्व - प्राप्ति और 'अमावास्या' में दीक्षा लेने से अनिष्ट होता है । 'पूर्णिमा' में धर्म- बुद्धि होती है, परन्तु सन्ध्या-गर्जन, जलद-गर्जन, भूकम्प, उल्का पात जिस दिन हों और जो दिन 'श्रुति' में निषिद्ध बताए गए हैं, उनमें 'दीक्षा' न ग्रहण करे ।

'रामार्चन चन्द्रिका' में लिखा है कि पञ्चमी, सप्तमी, षष्ठी, द्वितीया, पूर्णिमा, त्रयोदशी और दशमी – ये सभी दीक्षा के लिए प्रशस्त और सर्व-काम-प्रद हैं। इनमें केवल 'विष्णु' - मन्त्र ले । सनत्कुमार तन्त्र' के अनुसार ' षष्ठी' में 'शिव' -

मन्त्र ग्रहण करने में दोष नहीं है। 'शैवागम' में लिखा है कि शुक्ल पक्ष की द्वादशी, सप्तमी और षष्ठी निन्दनीय है।

१४ दीक्षा - नक्षत्र

'अश्विनी' नक्षत्र में सुख, 'भरणी' में मृत्यु, 'कृत्तिका' में दुःख, 'रोहिणी' में वाक्पतित्व, 'मृगशिरा' में सुख प्राप्ति, 'आर्द्रा' में बन्धु-नाश, 'पुनर्वसु ' में धन-सम्पत्ति, 'पुष्य' में शत्रु-नाश, 'अश्लेषा' में मृत्यु, 'मघा' में दुःख नाश और 'पूर्व फाल्गुनी' में सौन्दर्य-लाभ होता है । इसी प्रकार 'उत्तर-फाल्गुनी' में ज्ञान, 'हस्ता' में धन, 'चित्रा' में ज्ञान - सिद्धि, 'स्वाती' में शत्रु नाश, 'विशाखा' में सुख, 'अनुराधा' में बन्धु- वृद्धि, 'ज्येष्ठा' में सुत-हानि, 'मूल' में कीर्तिवृद्धि, 'पूर्वाषाढ़' व 'उत्तराषाढ़' में कीर्ति, 'श्रवण' में दुःख, 'धनिष्ठा' में दारिद्र्य, 'शतभिष' में ज्ञान, 'पूर्व भाद्र' में सुख

और 'रेवती' में कीर्ति-लाभ होता है, किन्तु शिव व वह्नि मन्त्र लेने से 'आर्द्रा' और 'कृत्तिका' दोषावह नहीं होते ।

१५.दीक्षा-योग

रत्नावली' में लिखा है कि १ प्रीति, २ आयुष्मान, ३ शोभन, ४ धृति, ५ वृद्धि, ६ ध्रुव, ७ सुकर्मा, ८.साध्य, ९.शुक्र, १० हर्षण, ११ वरीयान, १२ शिव, १३ ब्रह्म, १४ सिद्ध, १५ सौभाग्य और १६ इन्द्र – ये १६ योग 'दीक्षा' के लिए प्रशस्त हैं ।

१६. दीक्षा करण

१ बव, २ कौलव, ३ तैतिल और ४ वणिज करण शुभ हैं ।

१७.दीक्षा लग्न

'विष्णु - मन्त्र' के सम्बन्ध में स्थिर लग्न अर्थात् वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ; 'शिव-मन्त्र' के सम्बन्ध में मेष, कर्कट, तुला और मकर; 'शक्ति- मन्त्र' के सम्बन्ध में द्वयात्मक लग्न अर्थात् मिथुन, कन्या, धनु और मीन शुभ हैं ।

'अगस्त्य संहिता' में लिखा है कि लग्न के तृतीय, षष्ठ और एकादश स्थान में पाप ग्रह तथा लग्न, चतुर्थ, सप्तम, दशम, नवम और पञ्चम स्थान में शुभ ग्रह होने पर मन्त्र लेना प्रशस्त है, किन्तु ' वक्र ग्रह ' - दीक्षा के लिए अनिष्टकारी है।

१८.दीक्षा - पक्ष

'शुक्ल पक्ष' की 'दीक्षा' शुभ होती है और 'कृष्ण - पक्ष' में पञ्चमी तक 'दीक्षा' ली जाती है। 'कालोत्तर' में लिखा है कि 'सम्पत्ति' - कामी के लिए 'शुक्ल पक्ष' और 'मुक्ति' - कामी के लिए 'कृष्ण पक्ष' प्रशस्त है ।

१९. दीक्षा - काल में विशेष निर्णय

'रत्नावली' में लिखा है कि भाद्रपद मास की षष्ठी, आश्विन की कृष्णा चतुर्दशी, कार्तिक की शुक्ला नवमी, मार्गशीर्ष की तृतीया, पोष की शुक्ला नवमी, माघ की शुक्ला चतुर्थी, फाल्गुन की शुक्ला नवमी, चैत्र की काम चतुर्दशी, वैशाख की अक्षय तृतीया, ज्येष्ठ का दशहरा, आषाढ़ की शुक्ला पञ्चमी और श्रावण की कृष्णा पञ्चमी में मन्त्र लेना तीर्थ-स्थान की 'दीक्षा' - समान कोटि- गुना फलदायी है। इन देव पर्वों में मास, तिथि, वार, योग, करण और नक्षत्रादि का कोई विचार भी नहीं करना पड़ता । 'योगिनी तन्त्र' में लिखा है कि उत्तरायण और दक्षिणायनादि संक्रान्ति, चन्द्र-सूर्य ग्रहण, युगाद्या और मन्वन्तरा तिथि तथा पूजादिनों में 'दीक्षा' - कार्य प्रशस्त है। निन्दित मास में भी 'सूर्य' - ग्रहण यदि हो, तो उस समय 'दीक्षा' लेना चाहिए। 'सूर्य' और

'चन्द्र'ग्रहण के समय 'दीक्षा' लेने में लग्नादि का कोई विचार नहीं करना पड़ता ।

'रुद्रयामल' में लिखा है कि 'सूर्य' - ग्रहण - काल में 'शक्ति दीक्षा' और 'चन्द्र'-ग्रहण-काल में 'विष्णु दीक्षा' निषिद्ध है । यह निषेध श्रीविद्या और गोपाल को छोड़कर अन्य देवतात्रों के सम्बन्ध में समझना चाहिए ।

'नील - तन्त्र' में 'तारा' - मन्त्र - दीक्षा विषय में कृष्णाष्टमी तिथि, शुभ लग्न, पूर्व भाद्रपद नक्षत्र और मित्र तारा को शुभ बताया है । 'तारा' - मन्त्र के लिए अनुराधा और रेवती नक्षत्र तथा आश्विन और कार्तिक मास विशेष रूप से प्रशस्त हैं । 'यामल' में लिखा है कि सूर्य - ग्रहण के समय 'श्रीं', 'ह्रीं', 'क्रीं' मन्त्र, 'लोपा' मन्त्र और 'दुर्गा' - - मन्त्र ग्रहण करने से मुक्ति-लाभ होता है । 'कुलार्णव' में लिखा है कि रवि-वार में सप्तमी, सोमवार में अमावास्या, मङ्गल - वार में चतुर्थी और बृहस्पति में अष्टमी तिथि देव-पर्व के समान होती हैं, अत: इनमें 'दीक्षा' ग्रहण करे । 'विष्णु-यामल' में

लिखा है कि 'देवी बोधन तिथि' से 'महानवमी' तक की किसी भी तिथि में 'दीक्षा' लेना अभीष्ट फल - दायी होता है । 'मुण्ड - माला तन्त्र' में लिखा है कि महाविद्याओं का मन्त्र ग्रहण करने में कालादि और अरि- मित्रादि दोषों का विचार न करे । 'समया- तन्त्र' में लिखा है कि गुरु-देव शिष्य को बुलाकर कृपापूर्वक स्वेच्छा से जब भी मन्त्र प्रदान करें, तब लग्नादि के विचार करने की आवश्यकता नहीं रहती । ऐसे समय में वार, ग्रह, नक्षत्र और राशि आदि सभी शुभावह हो जाते हैं ।

२० दीक्षा-स्थान

गो-शाला, गुरु- गृह, देव - मन्दिर, कानन, पुण्य क्षेत्र, उद्यान, नदी-तट, आमला व बिल्व वृक्ष के समीप, पर्वताग्र, गह्वर और गङ्गा- तीर - इन स्थानों में 'दीक्षा' कोटि गुना फल देती है । निषिद्ध-स्थान ये हैं - गया, भास्कर क्षेत्र

(कोणार्क देश), विरजा तीर्थ, चन्द्रशेखर पर्वत, चट्टग्राम, मातङ्ग देश और कन्या - गृह (काम रूप) ।

२१.माला - निर्णय

' सनत्कुमार संहिता' में लिखा है कि अनामा के मध्य-पर्व से लेकर कनिष्ठादि होते हुए तर्जनी के मूल तक दस पर्वों में जप करे ।

'मुण्ड - माला - तन्त्र' में इसे ही 'कर-माला' बताया है। यदि अष्टोत्तर-शत जप करना हो, तो उक्त क्रम से शत संख्या पूर्ण होने पर अनामा के मूल से प्रारम्भ कर कनिष्ठादि क्रम से तर्जनी के मध्य पर्व तक आठ पर्वों में आठ वार जप करे। मध्यमा के शेष दो पर्वों को मेरु - रूप माने । 'शक्ति' - मन्त्र के जप में अनामा के मध्य और मूल पर्व, कनिष्ठा के तीन पर्व, अनामा का अग्र पर्व, मध्यमा के तीन पर्व तथा तर्जनी का मूल पर्व- इन दश पर्वों का उपयोग करे क्योंकि

'श्रीक्रम' के वचनानुसार तर्जनी के अग्र और मध्य-पर्व में 'शक्ति मन्त्र' का जप करने से पाप होता है। तर्जनी के इन दोनों पर्वों को इस दशा में 'मेरु' माने । 'हंस - पारमेश्वर तन्त्र' के अनुसार इसी को 'शक्तिमाला' कहते हैं। अष्टोत्तर शत जप करते समय उक्त क्रम से शत संख्या पूर्ण होने पर अनामिका के मूल पर्व से आरम्भ कर कनिष्ठादि क्रम से मध्यमा के मूल पर्व तक आठ बार जप करे ।

श्रीविद्या के मन्त्र जप में, अनामा - मध्यमा के मूल और अग्र इन दोदो पर्वों, कनिष्ठा के तीन और तर्जनी के तीन - कुल दश पर्वो पर जप करे। अनामा और मध्यमा के शेष दो पर्वों को 'मेरु' माने। अष्टोत्तर-शत जप करने के लिए, उक्त क्रम से शत संख्या पूरी करने के बाद, कनिष्ठा के मूल से आरम्भ कर, तर्जनी के मूल तक प्रदक्षिणा -क्रम' से आठ पर्वो पर आठ बार जप करे ।

'जप- काल' में अँगुलियों को अलग न रखे और हथेली को कुछ सिकोड़ कर जप करे। अँगुलियों को अलग कर छिद्र

रखते हुए जप करने से 'जप-फल' की हानि होती है । इसी प्रकार अँगुली के अग्रभाग या 'मेरु' का लङ्घन करते हुए और पर्व - सन्धियों में जो जप किया जाता है, वह निष्फल होता है ।

'विश्वसार तन्त्र' में लिखा है कि गणना विधि का उल्लङ्घन कर जप करने से 'जप-फल' राक्षस ले लेते हैं । अतः जप - संख्या की गणना करते हुए जप करे । हृदय देश पर हाथ रख, अँगुलियों को कुछ सिकोड़ कर और दोनों हाथों को वस्त्र से ढँक कर, दाहने हाथ में 'जप' करना चाहिए।

२२.जप-संख्या-धारण-विधि

अक्षत, अँगुलियों के पर्व, धान्य, पुष्प, चन्दन और मिट्टी से 'जप - संख्या' धारण न करे । इसके लिए लाक्षा, रक्तचन्दन, सिन्दूर और शुष्क गो-मय को एकत्र कर इनके चूर्ण की गोलियाँ बना लें । इन्हीं गोलियों से जप संख्या की

धारणा रक्खे। किसी-किसी के मत में ये गोलियाँ 'पुरश्चरण' के जप में प्रयुक्त होती हैं; 'माला - जप' में उसी माला से ही 'जप - संख्या' धारण करनी चाहिए ।

२३.वर्ण-माला

'सनत्कुमारीय तन्त्र' में लिखा है कि 'अ' से 'क्ष' तक के वर्णों का नाम 'वर्ण - माला' है । इन इक्यावन वर्णों में से 'अ' से 'ल' तक पञ्चाशद्-वर्ण-माला है और 'क्ष' इस माला का मेरु है । इन सभी वर्णों में अनुस्वार लगाकर अनुलोम-विलोम - क्रम से ('अ' से 'ल' तक; 'ल' से 'अ' तक) जप करे। यही माला अन्तर्यजन में प्रशस्त है । वर्ण-माला आठ वर्गों में विभक्त है यथा - १ अ वर्ग (अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः), २.क-वर्ग , ३. च वर्ग, ४.ट-वर्ग, ५. त वर्ग, ६. प-वर्ग, ७य वर्ग (य, र,, व, श), ८. ष-वर्ग(ष, स, ह, ळ, क्ष) ।

इस माला में जप करने का क्रम यह है कि अकारादि वर्ग के प्रत्येक वर्ण में अनुस्वार लगाकर, एक-एक वर्ण के बाद, इष्ट-मन्त्र का एक-एक बार उच्चारण करते. हुए जप करे । इसी प्रकार १०८ बार बार जप करना चाहिए । 'अन्तर्यजन' में ही नहीं, 'बाह्य-पूजा' में भी 'वर्ण-माला' से जप करना श्रेष्ठ है । पहले 'अं' का उच्चारण कर 'मूल मन्त्र' का एक बार उच्चारण करे। इसी प्रकार 'ळ' तक एक-एक वर्ण का अनुस्वारसहित उच्चारण करते हुए प्रत्येक वर्ण के बाद 'मूल मन्त्र' का एकएक बार जप करे। यही 'वर्ण माला जप' है ।

मालिनी- विजय तन्त्र' में इस वर्ग-मयी माला के सूत्र के सम्बन्ध में बताया है कि प्रवाल के समान प्रभावती सूत्र - रूपा निद्रिता सर्पाकारा कुल - कुण्डलिनी शक्ति ही 'वर्ग - माला' का सूत्र है; उसके आरोहण-अवरोहण से शत संख्या और अष्ट वर्गों के आदि वर्णों से अष्ट - संख्या होती है । 'वैशम्पायन संहिता' में लिखा है कि रुद्र रूपी महादेव ने

प्रलयाग्नि से पृथ्वी का उद्धार करते समय, 'पृथ्वी' - वीज ल-कार का भी उद्धार किया था। अतएव 'प्रलय' - काल में प्रलयाग्नि से उद्धृत उक्त 'ल-कार' को लेकर, 'वर्ण - माला' में दो 'ल' वर्ण विद्यमान हैं। इसी से 'वर्ण - माला' में 'ह - कार' के वाद, 'ल' का एक बार फिर से उच्चारण होता है ।

२४.माला मणि

' बाह्य पूजा में पद्मबीजादि की मालाएँ प्रशस्त मानी गई हैं। रुद्राक्ष, शङ्ख, पद्म-वीज, जीव-पुनि का मुक्ता, स्फटिक, मणि, रत्न, सुवर्ण, प्रवाल, रौप्य और कुश - मूल- इनमें से किसी एक की माला से गृहस्थ को जप करना चाहिए ।

२५. विविध माला - जप फल

अँगुलियों में गणना करते हुए जप करने से एक गुना फल, अँगुली-पर्व में आठ-गुना, जीव-पुत्रिका माला में दस गुना,

शङ्ख - माला में सौ गुना, प्रवाल-माला में सहस्र गुना, मणि, रत्न स्फटिक माला में दस सहस्र गुना, मुक्ता-माला में लाख गुना, पद्मामाला में दस लाख गुना, वर्ण-माला में करोड़ गुना, कुश - मूल माला में सौ करोड़ और रुद्राक्ष माला में जप करने से अनन्त फल होता है । ये सभी मालाएँ मुक्ति-दायिनी हैं ।

और स्फटिक क्योंकि एकभगवती जपविभिन्न काम- 'कालिका पुराण' में लिखा है कि रुद्राक्ष, इन्द्राक्ष का जीव पुत्रिकादि किसी दूसरी माला से योग न करे जातीय माला में अन्य जातीय माला का योग होने से कर्ता के काम्य या मोक्ष - फल को प्रदान नहीं करती। नाओं के लिए, विभिन्न प्रकार की मालाएँ निर्दिष्ट हैं; नाश' के लिए पद्म-वीज माला, 'पाप नाशार्थ' - कुश - मूल-माला, 'पुत्र - हेतु' - जीव-पुत्रिका- माला, 'अभीष्ट' के लिए मणि - रौप्य - माला और 'विपुल धन' के लिए - प्रवाल-माला |

'मुण्ड - माला' तन्त्र में लिखा है कि 'धूमावती' के सम्बन्ध में श्मशान - धत्तूर की लकड़ी से बनी माला प्रशस्त है । 'नील - सारस्वत' (तारा) मन्त्र में 'महा - शङ्ख-मयी' - माला प्रशस्त बताई है । 'महा'शङ्ख' के सम्बन्ध में 'मुण्ड - माला' तन्त्र में लिखा है कि मनुष्य की ललाटास्थि से बनी माला 'महा-शङ्ख-मयी' कहलाती है । कर्ण और नेत्र के बीच की अस्थि का नाम 'महा - शङ्ख' है । 'तारा' - मन्त्र के जप में यह माला शुभ- दायिनी है ।

'वाराही तन्त्र' में 'भैरवी' विद्या के विषय में सुवर्ण, मणि, स्फटिक, शङ्ख और प्रवाल-माला विहित बताई हैं तथा जीव-पुत्रिका माला को त्याज्य बताया है । पद्म-वीज और रुद्राक्ष माला को विशेषतः प्रशस्त कहा है । 'त्रिपुर सुन्दरी' के मन्त्र - जप में रक्त-चन्दनवीज की माला अति श्रेष्ठ है । ये मालाएँ भोग और मोक्षदायिनी हैं । 'विष्णु' - मन्त्र में तुलसी - माला, 'गणेश' - मन्त्र में गज-दन्तमाला और 'त्रिपुरा' - मन्त्र में रुद्राक्ष व रक्त चन्दन - माला विहित हैं ।

'मणि' - विषय में 'मुण्ड - माला तन्त्र' में लिखा है कि माला की मणियाँ, चाहे किसी भी वस्तु की हों, सम रूप होनी चाहिए । वे छोटी-बड़ी न हों, न बहुत बड़ी हों, न बहुत छोटी, कीड़ों से खाई या पुरानी न हों, उन्हें नवीन होना चाहिए। 'गौतमीय तन्त्र' में लिखा है कि 'वर्ण - माला' से सभी प्रकार के 'मन्त्र' - जप में सफलता मिलती है ।

'चामुण्डा तन्त्र' में लिखा है कि नित्य जप कर - माला' में करना चाहिए । विशेष विधि न दी हो, तो 'काम्य' - जप भी 'कर-माला' में करे । माला के अभाव में सभी 'काम्य' - जप 'कर - माला' ही में किए जाते हैं । मोक्षार्थ- पञ्चशत, धन सिद्ध घर्थ - त्रि-शत, सर्व-कामसाधन में - सप्तविंशति, मारणादि अभिचार कार्यों में – पञ्च- दश, काम्य-सिद्धि में - चतुः - पञ्चाशत और सर्व-कार्य-सिद्धि में - अष्टोत्तरशत मणियों की माला बनानी चाहिए ।

२६. आसन - प्रकार

'हंस - माहेश्वर' में लिखा है कि कोमल पद्मासन, कुशासन, दारु-आसन और चर्मासन शुद्ध तथा कार्य सिद्धि दायक हैं। लोम-युक्त चर्मासन पर साधनादि करने से सारा कार्य नष्ट हो जाता है । काम्य-कर्म में कम्बलासन और विशेष कर रक्त - कम्बलासन श्रेष्ठ है । ज्ञान - सिद्धि में कृष्णाजिन, मोक्ष व श्री - कामना में व्याघ्र चर्मासन और मन्त्र - सिद्धि में कुशासन प्रशस्त है । मृत्तिकासन दुःख, काष्ठासन दौर्भाग्य, वंशासन दारिद्र्य, पाषाणासन रोग- पीड़ा, तृणासन यशो-हानि, पत्रासन चित्त-वैकल्य करता है और वस्त्रासन से जप, ध्यान तथा तप की हानि होती है । कुशासन के ऊपर वस्त्र बिछाकर साधन करने से रोग निवारण होता है । 'योगिनी तन्त्र' में लिखा है कि कृष्णाजिन पर अदीक्षित गृहस्थ को नहीं बैठना चाहिए; इस पर केवल ब्रह्मचारी, वन-वासी और भिक्षुक को ही बैठना चाहिए । 'आगम - कल्पद्रुम' के अनुसार मेष, व्याघ्र, गज, उष्ट्र और साँप के चर्मासन षट्-कर्म में विहित हैं।

२७.माला संस्कार

'यामल' में लिखा है कि असंस्कृत माला में जप निष्फल होता है और देवता रुष्ट होता है। 'सनत्कुमार तन्त्र' में लिखा है कि कार्पास सूत्र में गुँथी माला से चतुर्वर्ग - सिद्धि होती है । यह सूत्र ब्राह्मण कुमारी द्वारा प्रस्तुत हो, तो और भी फल - प्रद होगा। शान्ति - कार्य में श्वेत वर्ण, वश्यादि - कार्य में लोहित - वर्ण और मारण कार्य में कृष्ण वर्ण के सूत्र से माला गूँथे । कार्पास - सूत्र के स्थान पर पट्ट सूत्र से माला गूंथी जा सकती है । मुक्ति, ऐश्वर्य और जपादि - कार्य में ब्राह्मण श्वेत वर्ण, क्षत्रिय रक्तवर्ण, वैश्य पीत - वर्ण और शूद्र कृष्ण - वर्ण के सूत्र से माला गूँथे । अथवा लोहित-वर्ण के सूत्र से माला का गूँथना सब कार्यों में अभीष्ट फल-दायक है।

सूत्र को त्रिगुण कर उसे पुनः त्रिगुणित करे। तब उससे शास्त्रानुसार माला गूँथे । जैसी मणि हो, उसी के चाहिए ।

प्रणव और अकारादि एक - एक इत्यादि) का उच्चारण करते हुए माला गूंथे । अनुरूप सूत्र भी होना वर्ण (ॐ अं, ॐ आं बीच बीच में 'ब्रह्मग्रन्थि' देता जाय । 'मेरु' - स्थल को भी ग्रन्थि - बद्ध करना चाहिए । इस प्रकार माला गूंथ कर उसका संस्कार करे ।

'एकवीरा - कल्प' में लिखा है कि मातृका - वर्ण या मूल मन्त्र से माला गूँथे । ध्यान-परायण होकर दोनों सूत्रों को एकत्र कर 'हूं' मन्त्र से उसके दोनों छोरों को बाँधे । अन्त में दोनों सूत्रों को मिलाकर 'ॐ से मेरु को बाँध, तब प्रतिष्ठा करे ।

'गौतमीय तन्त्र' में लिखा है कि मणियों के मुख में मुख और पुच्छ में पुच्छ मिलाते हुए गो - पुच्छ या सर्पाकृति कर माला का गुन्थन करे । 'छन्द-सार' में मुख और पुच्छ के सम्बन्ध में लिखा है कि रुद्राक्ष का उन्नत भाग मुख और निम्न भाग पुच्छ, पद्म-वीज का दो विन्दुओं से युक्त सूक्ष्म भाग मुख और एक विन्दुवाला स्थूल भाग पुच्छ है । इस प्रकार रुद्राक्ष

और पद्माक्षादि माला में मुख - पुच्छ स्थिर कर उन्हीं में से एक को 'मेरु' बनाए। सार्द्ध-त्रितय या सार्द्ध द्वितय- वेष्ठन कर मजबूती से गाँठ दे । अपनी इच्छानुसार साधक को उक्त किसी एक विधि से माला गूँथ लेनी चाहिए।

'कालिका पुराण' में लिखा है कि प्रति बीज के बाद माला में 'ब्रह्म-ग्रन्थि' देते हुए माला तैयार करे या ग्रन्थि रहित दृढ़ रज्जु से माला को गूंथ कर उसका शोधन करे ।

अश्वत्थ के नवीन पत्तों को पद्माकार बिछाकर मातृका - मन्त्र और मूल - मन्त्र का उच्चारण करते हुए उसके ऊपर माला रखे । फिर निम्न 'सद्योजात - मन्त्र' से पञ्च - गव्य से माला का प्रक्षालन करे-

ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि, सद्योजाताय वै नमः ।

भवे भवेनाति-भवे, भवस्व मां भवोद्भवाय वै नमः ॥

इसके बाद निम्न 'वामदेव - मन्त्र' से माला में चन्दन, अगरु और कर्पूर का लेप करे।

ॐ नमो वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय, नमः कल - विकरणाय नमः बल-विकरणाय नमो बल-प्रमथ - नाथाय, नमः सर्व भूत-दमनाय नमो मनोन्मथनाय।

तब निम्न 'अघोर - मन्त्र' से माला को धूपित करे-

ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोर घोर-तरेभ्यः ।

सर्वतः सर्व- सर्वेभ्यो, नमस्तेऽस्तु रुद्र-रूपेभ्यः ॥

फिर निम्न 'तत्पुरुष - मन्त्र' से पुनः चन्दन द्वारा लेप करे-

ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ।

तदनन्तर माला के प्रत्येक वीज पर निम्न पञ्चम - मन्त्र का सौ बार जप करे- '

ॐ ईशानः सर्व विद्यानामीश्वरः, सर्व भूतानां ब्रह्माधिपतिब्रह्मणोऽधिपतिः ब्रह्मा, शिवों मेऽस्तु सदा - शिवोम् ॥

'मुण्ड - माला तन्त्र' में लिखा है कि माला के प्रत्येक वीज पर और 'मेरु' पर पञ्चम मन्त्र का सौ बार जप करे अर्थात् प्रत्येक वीज पर एक-एक बार जप करना होगा । शक्ति - अब माला में देवता का आवाहन कर प्राण प्रतिष्ठा कर यथापूजा करे । ' सनत्कुमार तन्त्र' में लिखा है कि माला का संस्कार और प्राणप्रतिष्ठा कर मूल मन्त्र से उस माला की पूजा करे । 'वाराही तन्त्र' में लिखा है कि माला के ऊपरी भाग में मायावीज 'ह्रीं' लिखकर निम्न मन्त्र से रक्त - पुष्प द्वारा माला की पूजा करे-

ह्रीं माले माले महा-माले ! सर्व तत्व स्वरूपिणि ।

चतुर्वर्ग स्त्वयि न्यस्तस्तस्मान् मे सिद्धिदा भव ॥

यह विधि शक्ति विषय के लिए है। विष्णु विषय के लिए 'यामल' में लिखा है कि 'ऐं श्रीं अक्ष- मालायै नमः' से माला की पूजा करे । तदनन्तर अकारादि वर्ग के प्रत्येक वर्ण द्वारा मूल - मम्म को पुटित कर उससे माला को अनुलोम विलोम - क्रम से अभिमन्त्रित करे ।

'योगिनी - हृदय' में लिखा है कि पूजा के बाद माला के देवत्व की कामना करते हुए अष्टोत्तर शत होम कर हुत-शेष को माला पर डाल दे । होम करने में यदि असमर्थ हो, तो द्वि गुण जप करना चाहिए। जिस देवता के मन्त्र में माला की प्रतिष्ठा करे, उसे छोड़ अन्य देवता के मन्त्र का उस माला में जप न करे । जप- काल में अपने शरीर या माला का हिलना-डुलना मना है। जापक का शरीर हिलने से सिद्धि-हानि और माला हिलने से बहु-दुःख होता है । जपकाल में माला को इस प्रकार रखे कि न तो उसमें शब्द हो और न वह हाथ से स्खलित ही हो क्योंकि शब्द होने से रोग और स्खलित होने से जप कर्ता का विनाश होता है । जप-समय

में माला का सूत्र टूटने से जप कर्ता की मृत्यु होती है । अत. सतर्क रहना चाहिए । जप के पूर्ण होने पर अपने कान पर या किसी ऊँचे स्थान पर माला को रखे । निम्न मन्त्र से माला की पूजा कर उसे यत्न- पूर्वक छिपा कर रखे-

ॐ त्वं माले ! सर्व देवानां, सर्व-सिद्धि प्रदा मता ।

तेन सत्येन मे सिद्धि, देहि । मातर्नमोऽस्तु ते ॥

कामना - भेद से अंगुलि जप नियम

'गौतमीय तन्त्र' में कामना-भेद लिखा है कि शत्रु का उच्चाटन आदि करने में तर्जनी और अंगुष्ठ द्वारा माला-जप करे । अंगुष्ठ और मध्यमा से मन्त्र - सिद्धि, अंगुष्ठ और अनामिका से उच्चाटनादि और अंगुष्ठ तथा कनिष्ठा से जप करने से शत्रु नाश होता है ।

'वैशम्पायन - संहिता' में लिखा है कि अंगुष्ठ और मध्यमा द्वारा भनामा के मध्य पर्व पर जप - माला चलावे । माला

का तर्जनी से स्पर्श न होने पाए। इस प्रकार जप करने से मुक्ति लाभ होता है। माला का सूत्र पुराना पड़ने पर फिर उसे गूँथकर मूल मन्त्र का सौ बार जप करे । प्रमाद - वश यदि जप- काल में हाथ से माला गिर पड़े, तो उसे उठाकर पुनः एक सौ आठ बार जप करे। माला का अस्पृश्य वस्तुओं से स्पर्श होने पर उसे पञ्च गव्य से धोकर जप करे। 'कुब्जिका तन्त्र' में लिखा है कि माला टूटने पर उसे फिर गूंथ कर १०८ बार जप करना चाहिए ।

'आगम - कल्पद्रुम' में लिखा है कि भूत-शुद्ध्यादि पूजा कर माला में गणेश, सूर्य, विष्णु, महा देव और दुर्गा का आवाहन कर उनकी पूजा करे । अन्त में पञ्च-गव्य में माला को डालकर 'ह्सौः' मन्त्र का उच्चारण करते हुए उसे उसमें से निकाल कर स्वर्ण पात्र में रखे और पञ्चामृत - नियम से क्रमशः दूध, दही, घी, मधु और शक्कर तथा शीतल जल द्वारा उसे स्नान कराए। फिर चन्दन, कस्तूरी और कुंकुम आदि का माला पर लेप कर 'ह्सौः' का १०८ बार जप करे

। तब माला में नव-ग्रह, दश दिक्पाल और गुरु देव की पूजा कर उस शुभ माला को ग्रहण करे ।

२८.मन्त्रपुरश्चरण

'योगिनी - हृदय' में लिखा है कि विशुद्ध मना व्यक्ति गुरु के आदेश से मन्त्र - सिद्धि की कामना से पुरश्चरण अवश्य करे क्योंकि जिस प्रकार जीव हीन देही कोई भी कर्म नहीं कर सकता, उसी प्रकार पुरश्चरण हीन मन्त्र सिद्धि नहीं दे सकता। अतएव साधक स्वयं पुरश्चरण करे या गुरु से कराए। गुरु के अभाव में शास्त्र - वेत्ता, सर्व प्राणि हितैषी और सद् गुण सम्पन्न ब्राह्मण से कराए । गुण- शालिनी पुत्र-वती स्त्री-गुरु से भी पुरश्चरण कराया जा सकता है ।

२९.पुरश्चरण-स्थान

'योगिनी - हृदय' में लिखा है कि पुण्य-क्षेत्र, नदी-तीर, गुहा, पर्वत का ऊपरी भाग, तीर्थ, सागर - सङ्गम, तपोवन, निर्जन उपवन, बिल्व-मूल, तराई, तुलसी- कानन, वृष - शून्यं गोष्ठस्थान, वृष- शून्य शिवालय, अश्वत्थ मूल, आमला मूल, गो-शाला, जल - मध्य-वर्ती स्थान, देवालय, समुद्र-तीर और अपना घर - ये सभी स्थान साधन कार्य में प्रशस्त हैं। सूर्य, अग्नि, गुरु, चन्द्र, प्रदीप, जल, ब्राह्मण और गाय के निकट जप करना शुभ - दायी है । जिस स्थान पर मन को प्रसन्नता का अनुभव हो, वहीं पुरश्चरणादि कार्य करे । अपने 'चर' में जप करना सौ गुना, 'गोष्ठ' में लाख गुना, 'देवमन्दिर' में कोटि गुना और 'शिव सान्निध्य' में जप करना अनन्त फल-दायक है ।

'ब्रह्म - यामल' में लिखा है कि अपने 'घर' में एक गुना, 'गोष्ठ' में दश गुना, 'वन' में शत गुना, 'तालाब' में हजार गुना, 'नदी तट' पर लाख गुना, 'पर्वताग्र' पर कोटि गुना, 'शिवालय' में सौ कोटि गुना और गुरु के पास' जप करना

अनन्त फलदायी है । म्लेच्छ - वसित स्थान और मृग - सर्पादि से युक्त स्थान छोड़कर पवित्र, अनिन्द्य तथा मनोरम स्थान को ही ग्रहण करे । जिस स्थान पर जप करे, उसके सम्बन्ध में साधक 'कूर्म चक्र' से विचार कर ले।

'गौतमीय तन्त्र' में लिखा है कि पर्वत, समुद्र तट, तपोवन और नदी तट के सम्बन्ध में 'कूर्म चक्र' का विचार करने की आवश्यकता नहीं होती, किन्तु 'गाँव' में या 'वास्तु गृह' में पुरश्चरण करने पर 'कूर्म चक्र' का विचार अवश्य करे।

३० पुरश्चरणवैधावैध - नियम

'गौतमीय तन्त्र' में लिखा है कि पुरश्चरण-कारी साधक भक्ष्याभक्ष्य का विचार रखे, अन्यथा भोजनदोष से सिद्धि नहीं होगी । मन्त्र सिद्धि-कामना से साधक हविष्याशी - होकर रहे ।

'अगस्त्य संहिता' में लिखा है कि गव्य दधि, गव्य दुग्ध, गव्य घृत, गन्ने की चीनी, तिल, सोनामूग, केमूक, छोड़-कन्द, नारिकेल, कदली, लवली, आम, आँवला, पनस और हरड़ व्रत विषय में हविष्य माने गए हैं। मतान्तर से हैमन्तिक धान्य, सैन्धव नमक, पीपल, जीरा, केला और जो वस्तुएँ तेल में न पकी हों, वे सब भी हविष्यान्न हैं। पुरश्चरण-काल में मधु, क्षार-द्रव्य, नमक, तेल, ताम्बूल और कांसे के पात्र का व्यवहार तथा दिवा भोजन का त्याग करे। मांस, गाजर, मसूर, अरहर, कोद, चना, बासी अन्न, चिकनाई रहित द्रव्य और कोड़े द्वारा खाए हुए पदार्थ का भी व्यवहार न करे।

'रामार्चन चन्द्रिका' में लिखा है कि मैथुन, मैथुनालाप और गपशप परित्याज्य हैं तथा ऋतु काल छोड़ अपनी पत्नी का स्पर्श न करे। पुरश्चरण- समय में क्षौर कर्म, तेल मर्दन, अनिवेदित भोजन आदि न करे। पश्च-गव्य या आँवले के रस द्वारा मन्त्र जप पूर्वक स्नान और आचमन कर खाद्य तथा पानीय पर मन्त्र का जप करे और तब भोजन करे।

इसी प्रकार यथा विधान तीनों सन्ध्याओं में - देवता का पूजन करे । त्रिसन्ध्या या एक सन्ध्या में केवल मन्त्र जप न करे । समर्थ व्यक्ति तीन बार और असमर्थ व्यक्ति एक या दो बार स्नान करे। स्नान या पितृ तर्पण किए बिना कार्य करने से वह निष्फल होता है । अशुद्ध हाथ, नग्न या अनावृत्त - मस्तक होकर या कुछ प्रलाप करते हुए जप करना व्यर्थ है ।

'नारदीय- तन्त्र' में लिखा है कि पुरश्चरण-काल में लघु, अनुष्ण और सुपक्व पदार्थ खाए । इन्द्रियों को उत्तेजना देनेवाले पदार्थ मना हैं |

'कुलार्णव' में लिखा है कि जिसका अन्न जल ग्रहण करते हुए धर्म-सञ्चय किया जाता है, उसे उस धर्म का आधा फल मिलता है और आधा साधक को । अतः पुरश्चरण के समय परान्न वर्जित है । परान्न भोजन से जिह्वा, प्रति ग्रह से

हाथ और पर- स्त्री से मन दग्ध होता है, ऐसी दशा में सिद्धि कैसे सम्भव है ? यहाँ परान्न से भिक्षा से भिन्न अन्य उपाय से प्राप्त अन्न समझना चाहिए क्योंकि भिक्षान्न पर भिक्षुक का अपना अधिकार होता है ।

'वामकेश्वर तन्त्र' में लिखा है कि यदि अपने सामर्थ्य है, तो वैदिकाचारी, पवित्र, सत्कुलोत्पन्न, श्रीमान्, सद् ब्राह्मण को छोड़ अन्य किसी से अग्नि के सिवा और कोई वस्तु ग्रहण न करे और यदि स्वयं असमर्थ हो, तो तीर्थातिरिक्त स्थान में पर्व रहित तिथि में विशुद्ध व्यक्ति से एक दिन का भक्ष्य भोजन भिक्षा रूप में ले । जो व्यक्ति लोभ-वश अधिक भिक्षा लेता है, उसे सौ कल्पों में भी सिद्धि नहीं मिलती ।

'जप' के समय अन्य शब्द एक बार बोलने से प्रणव- पाठ - पूर्वक फिर से जप का प्रारम्भ करना पड़ता है । निष्ठुर शब्द कहने से एक बार प्राणायाम और अनेक बातें करने से आचमन तथा अङ्ग-न्यास कर फिर से जपारम्भ करना होता

है । 'जप' - काल में अस्पृश्य स्थान का स्पर्श होने पर भी आचमनादि का नियम है ।

मल-मूत्र वेग को रोके हुए जो 'जप' या 'पूजा' की जाती है, वह अपवित्र होती है । मैला वस्त्र पहन कर केश और मुखादि को दुर्गन्धि युक्त रखते हुए 'जप' करने से देवता चुपचाप उस 'जप' - कारी का नाश करते हैं । आलस्य, जंभाई, नींद, भूख, थूकना, भय, नीच जाति का स्पर्श और क्रोध ये सब जप काल में मना हैं । न बहुत जल्दी, न बहुत धीरे और नियमित संख्या में 'जप' करे। देवता, - गुरु और मन्त्र में ऐक्य भाव रखते हुए एकाग्र मन होकर प्रातः काल से मध्याह्न काल तक 'जप' करना चाहिए क्योंकि अधिक समय तक 'जप' करने से सम्भव है कि जिल्हा की क्लान्ति के कारण 'जप'संख्या में न्यूनाधिक्य हो जाय । पहले दिन जो 'जप' - संख्या हो, उसी संख्या में बाद में भी प्रति दिन 'जप' होना चाहिए क्योंकि किसी दिन कम और किसी दिन अधिक 'जप' करने से वह निष्फल होता है ।

'गौतमीय तन्त्र' में लिखा है कि 'जप' काल में पतित, व्रात्य (सावित्री भ्रष्ट या जिसका यज्ञोपवीत अयोग्य समय में हुआ हो), खल, देव-निन्दक, अनाश्रमी ब्राह्मण और विश्व निन्दक व्यक्ति का दर्शन न करे ।

'मुण्डमाला - तन्त्र' में लिखा है कि कलि युग में विहित संख्या का चौगुना जप करना चाहिए।

१ भू - शय्या, २ ब्रह्मचारित्व, ३ मौनावलम्बन, ४ आचार्य - सेवा, ५. नित्य त्रिसन्ध्या - स्नान, ६ क्षुद्र कर्मों का परित्याग, ७ नित्य-पूजा, ८ नित्य-दान, ६ देवता स्तुति, १० नैमित्तिक पूजा, ११ गुरु और देवता के प्रति विश्वास और १२ जप निष्ठा - इन बारहों वातों से मन्त्र - सिद्धि होती है ।

जूठे मुँह बातचीत, मिथ्या भाषण और कुटिल बातें मना है। 'जप' - होमादि और पूजा काल में सत्य भी न बोले अर्थात्

मौन रहे । ऐसा न करने से सफलता नहीं मिलती । 'पुरश्चरण' - काल में मृताशौच या जातकाशौच होने से सङ्कल्पित कार्य को छोड़ना नहीं चाहिए । 'योगिनी - हृदय' में लिखा है कि 'पुरश्चरण' - काल में पवित्र कपड़े पहन कर कुश - शय्या पर सोए । शय्या को प्रति दिन धोकर उस पर अकेले निर्भय होकर सोना चाहिए। गाना बजाना सुनना, नाच देखना, शरीर में गन्ध लगाना, निर्माल्य छोड़ अन्य पुष्प धारण करना, उष्ण जल से स्नान करना और अन्य देवता की पूजा करना वर्जित है ।

'वैशम्पायन - संहिता' में लिखा है कि वस्त्र सम्बन्धी कोई अनियमन करे, एक वस्त्र या वहु - वस्त्र पहनकर जप नहीं करना चाहिए । पतित व्यक्ति का दर्शन होने से, आलाप सुनने से, जंभाई या अपान वायु निकलने से 'जप' छोड़कर पुन. आचमन, प्राणायाम, अ-न्यासादि एवं सूर्य, अग्नि और ब्राह्मण-दर्शन-पूर्वक 'जप' का आरम्भ करे ।

विना आसन या चलते-चलते, सोते समय, भोजन समय, चिन्तित या क्रुद्ध, भ्रान्त अथवा क्षुधार्त होने पर 'जप' न करे। दोनों हाथों को आच्छादित कर या मस्तक को प्रावृत कर 'जप' न करे । मार्ग में और अमल स्थान में अन्धकारमय घर में तथा चर्मपादुका पहने हुए या शय्या पर या सवारी पर बैठकर किया जानेवाला 'जप' निष्फल होता है। पैर फैलाकर या उत्कटासन पर बैठ कर, यज्ञ-काष्ठ, पत्थर और मिट्टी पर बैठकर या आसन पर खड़े होकर 'जप' न करे । 'जप' के समय विल्ली, मुर्गा, बगला, शूद्र, बन्दर गधा- इनमें से कोई दिखाई पड़े, तो आचमन करे और स्पर्श होने पर स्नान कर 'जप' पूर्ण करे ।

इन सब नियमों का पालन सभी प्रकार के 'जप' में करना होता है, किन्तु 'मानस जप' में कोई नियम लागू नहीं होता। जाते समय, सोते समय और शुचि या अशुचि अवस्था में भी मन्त्र का स्मरण करते हुए 'मानस जप' का अभ्यास

किया जाता है। अतः 'मानस जप, सर्वत्र सव दशाओं में किया जा सकता है, उससे कोई दोष नहीं होता । श्यामादि विद्याओं के मन्त्र - 'जप' में कुछ विशेष बातें हैं, जिनके लिए सम्बन्धित प्रकरण में देखा जा सकता है ।

३१ जप फल -

'शिव-धर्म' में लिखा है कि 'जप' निष्ठ द्विज को समस्त यज्ञों का फल मिलता है क्योंकि 'जप' - यज्ञ सभी यज्ञों से अधिक फल- प्रद है। 'जप' द्वारा स्तुति करने से देवता प्रसन्न होकर विपुल काम्य वस्तुएँ और शाश्वत मोक्ष प्रदान करता है । यक्ष, राक्षस, पिशाच, ग्रह और भीषण सर्प भयभीत होने के कारण जापक व्यक्ति के पास आ भी नहीं सकते ।

'पाद्म नारदीय' में लिखा है कि कर्म यज्ञ, प्रतिष्ठा और तप - इनमें से कोई 'जप' -यज्ञ के षोडशांश के बरावर भी फल-

प्रद नहीं है । यह वाचिक 'जप' यज्ञ का फल है; इसकी अपेक्षा 'उपांशु जप' सौ -गुना और उपांशु की अपेक्षा 'मानस जप' हजार गुना अधिक फलदायी है । सिद्धि - कामी के लिए 'मानस जप', पुष्टि - कामी के लिए 'उपांशु जप' और मोक्ष-कामी के लिए 'वाचिक जप' प्रशस्त है । पूजा के बिना 'जप' निष्फल होता है, अतः कम से कम एक बार पूजा अवश्य करे । चाहे जप पूर्ण होने पर पूजा करे या पूजा कर चुकने पर 'जप' करे |

३२ जप - निरूपण -

मन्त्र के वर्णों की बार बार आवृत्ति करना ही 'जप' है। 'जप' तीन प्रकार का होता है - १ मानसिक, २ उपांशु और ३ वाचिक । मन्त्रार्थ का स्मरण करते हुए, मन ही मन मन्त्र का उच्चारण करना - 'मानसिक जप' है । देवता में मन लगाकर, जिह्वा और ओष्ठ को कुछ कम्पित करते हुए,

केवल अपने को सुनाई पड़ने योग्य मन्त्रोच्चारण को 'उपांशु जप' कहते हैं । वाणी द्वारा मन्त्रोच्चारण 'वाचिक जप' कहलाता है । उच्च स्वरवाला जप'अधम', उपांशु जप – 'मध्यम' और मानस जप – 'उत्तम' है । जो व्यक्ति मन-ही-मन 'स्तव' - पाठ करता है और 'मन्त्र' - जप स्पष्ट उच्चारण-पूर्वक करता है, उसका वह 'स्तव' - पाठ और 'मन्त्र' - जप निष्फल होता है ।

'गौतमीय-तन्त्र' में लिखा है कि जो 'मन्त्र' पशु भाव में स्थित है, वह केवल वर्ण मात्र है; अतः सभी मन्त्रों को 'सुषुम्ना'ध्वनि (सुषुम्ना नाड़ी द्वारा) से उच्चारित करने से प्रभुत्व मिलता है । 'जप' - काल में मन्त्राक्षरों को चैतन्य - मयी शक्ति से गुंथा हुआ समझे । यह भावना करे कि वे चैतन्य शक्ति और परमामृत - मय परम- शिव में ग्रथित हैं । इस प्रकार के अनुष्ठान से पूजा - होमादि की आवश्यकता नहीं होती, 'जप' - मात्र से ही फल मिल जाता है । उक्त तन्त्र के 'दशाक्षर पटल' में लिखा है कि प्राण - बुद्धि से

सुषुम्ना के मूल- देश में, 'मूल मन्त्र' का जीव रूप में ध्यान कर, मन्नार्थ और मन्त्व-तत्त्व को हृदयङ्गम करते हुए 'जप' करे ।

'कुलार्णव' में लिखा है कि जप काल में मन, परम- शिव, शिवशक्ति और प्राण वायु के अलग - अलग स्थान में रहने से अर्थात् इन सबका एकत्र संयोग न होने से कल्प-कोटि जप करने पर भी मन्त्रसिद्धि नहीं हो सकती ।

मन्त्रोच्चारण से पहले मन्त्र का **'जातकाशौच'** होता है और मन्त्रोच्चारण के बाद **'मृताशौच'** । इन दोनों अशौचों से युक्त मन्त्र सिद्ध नहीं होता । मन्त्र के आदि और अन्त में ब्रह्म वीज (ॐ) लगा कर सात बार जप करने से ये दोनों अशौच दूर हो जाते हैं।

'मन्त्रार्थ', 'मन्त्र - चैतन्य' और 'योनि-मुद्रा' जाने बिना जो जप किया जाता है, वह निष्फल होता है। लुप्त - वीज मन्त्र कभी सिद्धि नहीं देता । 'भूत लिपि' द्वारा अनुलोम

विलोम से पुटित कर एक महीने तक सहस्र वार मन्त्र का जप करने से मन्त्र - सिद्धि होती है । 'भूत- लिपि' इस प्रकार है-

अ इ उ ऋ लृ ए ऐ ओ औ ह य र व ल ङ क ख ध ग ञ च छ झ जण टठ ढड न त थ ध द म प फ ब श ष स ।

इसे पढ़ने के बाद मूल मन्त्र का उच्चारण करने से अनुलोम-क्रम होता है । विलोम क्रम में उक्त 'भूत-लिपि' का रूप यह होगा- **स ष श ब भ फप मदधथत न ड ढ ठ ट ण ज झ छ च ञ ग घ ख क ङ ल व र य ह औ ओ ऐ ए लृ ऋ उ इ अ ।**

इस प्रकार पहले जप कर कुश, पुष्प और अर्घ्य - जल सहित तेजो-रूप जप - फल देवता के दाहने हाथ में समर्पित करे । फल - समर्पणपूर्वक यह जप सफल हुआ, यह सोचते हुए प्राणायाम करे । यह प्राणायाम जप के पूर्व

और अन्त में तीन-तीन वार करना चाहिए। शक्ति - विषय में लिखा है कि गन्ध, अक्षत और कुशोदक से देवी के बाँएँ हाथ में जप फल समर्पित करे।

पुरश्चरण में जप के अन्त में जप का दशांश होम, होम का दशांश तर्पण, तर्पण का दशांश अभिषेक और अभिषेक का दशांश ब्राह्मण-भोजन करावे। ब्राह्मण भोजन से जप का न्यूनाधिक्य - दोष दूर होता है। अथवा समस्त जप हो जाने परहोमादि करे। 'मुण्ड-माला - तन्त्र' में ऐसा ही लिखा है। 'सनत्कुमार तन्त्र' में लिखा है कि जिस अङ्ग की हानि हो, उसके लिए निर्दिष्ट संख्या का दूना जप करे, किन्तु होम का अभाव होने पर होम - संख्या का चौगुना जप करे। ब्राह्मण और क्षत्रिय होमादि में असमर्थ होने पर छः गुना तथा वैश्य आठ गुना जप करे।

इनकी स्त्रियों के सम्बन्ध में भी यह नियम समझना चाहिए। शूद्र जिस वर्ण का आश्रित हो, उसी वर्ण के नियमानुसार कार्य करे। अनाश्रित शूद्र होमादि में असमर्थ होने पर दस

गुना जप करे । जो शूद्र ब्राह्मण का भृत्य हो, उसके एवं उसकी स्त्री के सम्बन्ध में समान जप-संख्या समझनी चाहिए ।

'योगिनी - हृदय' और 'कुल प्रकाश' में लिखा है कि पञ्चाङ्ग पुरश्चरण का जो अङ्ग हीन हो, उसके सम्बन्ध में ब्राह्मणादि चार वर्ण क्रमशः उसकी संख्या का दुना, तिगुना, चौगुना और पाँच गुना जप करे ।

'शारदातिलक' के कुण्ड - प्रकरण में शूद्र के लिए त्रिकोण-कुण्ड की विधि बताई है । वहीं यह भी लिखा है कि कन्या त्रि-मधुर (घृतमधु शर्करा) युक्त लाज द्वारा होम करे । इस सबसे स्त्री और शूद्र का होमाधिकार प्रतिपादित होता है, किन्तु स्त्रियों या शूद्रों को ब्राह्मण से ही होम कराना चाहिए, वे स्वयं होम न करें ।

'नृसिंह - तापनीय' में लिखा है कि सावित्री, प्रणव, वेद और श्रीबीज के सम्बन्ध में शूद्र को अधिकार नहीं है । इन मन्त्रों

का उच्चा'रण करनेवाली स्त्री और शूद्र मरने पर नरक - गामी होते हैं ।

'वाराही तन्त्र' में लिखा है कि यदि शूद्र होम करना चाहे, तो वह 'स्वाहा' के स्थान पर 'नमः' का उच्चारण करता हुआ होम करे ।'वीर - तन्त्र' में लिखा है कि जो कुछ नियम कहे गए हैं, वे सब पुरुषों के लिए हैं । स्त्री के लिए पूजा या ध्यान का कोई नियम नहीं है । केवल जप से ही स्त्रियों को मन्त्र-सिद्धि होती है ।

'मुण्ड - माला तन्त्र' में लिखा है कि पूजोपकरण- द्रव्यादि का अभाव होने पर केवल जप से ही पुरश्चरण सिद्ध होता है, किन्तु ब्राह्मणभोजन अवश्य कराना चाहिए क्योंकि उससे अङ्ग - हीन क्रिया पूर्ण होती है । 'कुलार्णव' में लिखा है कि दीक्षा - हीन पशु-कल्प ब्राह्मण को अपने घर में भोजन कराने से नरक जाना होता है । अन्त में गुरु- देव को भोजन और वस्त्रादि से सन्तुष्ट कर दक्षिणा प्रदान करे क्योंकि उनके सन्तोष से मन्त्र -सिद्धि मिलती है । गुरु के -

अभाव में गुरु-पुत्र, उनके अभाव में गुरु- पत्नी और उनका भी अभाव होने पर अन्य ब्राह्मणों को दक्षिणा देकर कार्य पूरा करे। गुरु ही परब्रह्म-स्वरूप है, अतएव सबसे पहले उनकी पूजा कर अन्त में 'महापूजा' करे । फिर सुवासिनी और कुमारी पूजन कर उन्हें विविध अलङ्कारों तथा वस्त्रों से सन्तुष्ट कर वन्धु बान्धवों के साथ स्वयं भी भोजन करे । इस प्रकार पञ्चाङ्गोपासना द्वारा सम्यक् रूप से सिद्धमन्त्र होने पर भगवती की कृपा से साधक की सभी इच्छाएँ पूरी होती हैं ।

३३ ग्रहण- पुरश्चरण

चन्द्र या सूर्य ग्रहण - काल में उपवासी होकर समुद्र - गामिनी नदी में नाभि तक गहरे जल में खड़े होकर एकाग्र - चित्त से ग्रहण के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक इष्ट-मन्त्र का जप करे । -'रुद्र- यामल' में लिखा है कि नदी में घड़ियाल

आदि का भय होने पर या नदी - विहीन स्थान में उपवास पूर्वक शुद्ध जल से स्नान कर पवित्र स्थान पर बैठ कर ग्रास से मोक्ष - पर्यन्त जप करे । इस जप से पुरश्चरण का फल प्राप्त होता है । उपवास करने में असमर्थ होने पर स्नान पूर्वक संयत-चित्त होकर स्पर्श से मुक्ति - पर्यन्त मन्त्रजप करे और इसी अवधि में जप का दशांश होम, होम का दशांश तर्पण, तर्पण का दशांश अभिषेक और अभिषेक का दशांश ब्राह्मणभोजन कराकर पुरश्चरण पूर्ण करे । इस प्रकार मन्त्र जप करने से परम सिद्धि मिलती है।

'सनत्कुमार तन्त्र' में लिखा है कि यदि पुरश्चरण आरम्भ हो गया है, तो श्राद्ध आदि के कारण उसे छोड़ना नहीं चाहिए अन्यथा देव - द्रोह का पाप लगता है। शास्त्र में यद्यपि पञ्चाङ्ग उपासना (१ जप, २ होम, ३ तर्पण, ४ अभिषेक और ५ ब्राह्मण भोजन) को ही पुरश्चरण बताया है, किन्तु ग्रहण काल में पुरश्चरण से केवल जप मात्र समझना चाहिए। लिखा है कि सूर्योदय से लेकर पुनः सूर्योदय होने

तक किया जानेवाला जप भी 'पुरश्चरण' कहलाता है। जो यह कथन है कि ग्रहण काल में होमादि न करने पर भी पुरश्चरण सिद्ध होता है, उससे भी होमादि - विधि प्रतिपादित होती है । इस कथन से प्रकट है कि जहाँ होमादि - विधि होती है, वहाँ कोई त्रुटि नहीं होती । वस्तुतः 'पञ्चाङ्ग - उपासना' का ही नाम 'पुरश्चरण' है । ग्रहण में 'पञ्चाङ्ग-पुरश्चरण' का अनुष्ठान करने से मुख्य पुरश्चरण का भी अधिकार प्राप्त होता है, किन्तु उक्त अनुष्ठान न करने तक केवल जप-रूप पुरश्चरण करने का अधिकार नही होता ।

३४ पुरश्चरण-पद्धति

पुरश्चरण के लिए पहले स्थान निश्चय करे । फिर पुरश्चरण के तीन दिन पूर्व क्षौरादि कर्म करे । तब वेदी की चारों दिशाओं में एक या दा कास परिमित चौकोर क्षेत्र को आहार-विहाराथ मानकर उसके बाच मे कूम - चक्रानुसार

मण्डप का निमाण करें। उस दिन एक बार भाजन करे। दूसरे दिन स्नानादि नित्य - क्रिया समाप्त कर शुद्ध हो वेदिका के चारों ओर अश्वत्थ, यज्ञाडुम्बर और पाकड़ - इनमें से किसी वृक्ष की लकड़ी से बारह अगुल की दस कील बनावे और उनके ऊपर 'ॐ सुदशनाय अस्त्राय फट्' इस मन्त्र का एक सौ आठ बार जप कर वेदी की दशों दिशाओं में उन्ह निम्न मन्त्र से गाड़ दे—

ॐ ये चात्र विघ्न - कर्तारो, भुवि दिव्यन्तरीक्षगाः ।

विघ्न- भूताश्च ये चान्ये, मम मन्त्रस्य सिद्धिषु ॥

ममतत् कीलितं क्षेत्रं परित्यज्य विदूरतः ।

अपसर्पन्तु ते सर्वे, निविघ्नं सिद्धिरस्तु मे ॥

फिर **'ॐ सुदर्शनाय अस्त्राय फट् '** से कीलों की पूजा कर उनके ऊपर पूर्वादि दस दिशाओं में इन्द्रादि लोकपालों की पूजा करे । यथा**'ॐ भूर्भुवः स्वः इन्द्र लोकपाल !**

इहागच्छ' से आवाहन कर पोपचारों से पूजन करे । तब सब **विघ्नों के विनाशार्थ 'ॐ अद्येत्यादि अमुक-गोमुकदेव शर्मा मत्- कर्तव्यामुक देवताऽमुक-मन्त्र-पुरश्चरणकर्मणि सर्व विघ्न विनाशार्थं गणेश पूजामहं करिष्ये'** यह सङ्कल्प कर वेदी के मध्य में आवाहन कर पञ्चोपचारों से गणेश की पूजा करे । **दिक् पालों को बलि देकर क्षेत्र में प्रवेश करे** । वेदिका की दसों दिशाओं में क्षेत्र - पालादि देवताओं को निम्न मन्त्र से माष - भक्त (उड़द और भात) की बलि प्रदान करे -

ॐ ये रौद्रा रौद्रकर्माणो, रौद्र-स्थान-निवासिनः ।

मातरोऽप्युग्र रूपाश्च - गणाधिपतयश्च ये ॥

विघ्न- भूताश्च ये चान्ये, दिग्-विदिक्षु समाश्रिताः ।

सर्वे ते प्रीतमनसः प्रतिगृह्णन्त्विमं बलिम् ॥

इसके बाद गायत्री का जप करे । विद्याधराचार्य ने कहा है कि अगले दिन प्रातः स्नानादि नित्य क्रिया समाप्त कर ज्ञात और अज्ञात पापों के क्षय के लिए गायत्री का एक सहस्र जप करे। फिर धन, वस्त्र और आभूषण से ब्राह्मणों एवं गुरु- देव को सन्तुष्ट कर उनकी अनुमति लेकर जप में प्रवृत्त हो। जिस देवता के मन्त्र का पुरश्चरण हो, उसी देवता की गायत्री का जप करना चाहिए । प्रातः काल स्नान के बाद अयुत सावित्री जप का जो विधान है, वह अधिक पाप की आशङ्का होने पर माननीय है, अन्यथा उक्त गायत्री जप कर कार्यारम्भ करना चाहिए । गायत्री - जप के पहले सङ्कल्प कर ले । यथा - **ॐ अद्येत्यादि अमुक गोत्र श्रीअमुक शर्मा ज्ञाताज्ञात-पाप-क्षयकामः अष्टोत्तर-सहस्र-गायनी जपमहं करिष्ये ।**' इस दिन उपवासी या हविष्याशी होकर रहें ।

अगले दिन उषा - काल में स्नानादि कर स्वस्ति वाचन पूर्वक सङ्कल्प करे । यथा—'**ॐ अमुक गोत्रः श्रीअमुक शर्मा अमुक - देवतायाः अमुक-मन्त्र- सिद्धि प्रतिबन्धकाशेष- दुरितक्षय-पूर्वक — तन्मन्त्र - सिद्धिकामोऽद्यारभ्य यावता कालेन सेत्स्यति तावत्कालं अमुक मन्त्रस्य इयत्संख्यक - जप - तद्दशांश - होम - तद्दशांश - तर्पण - तद्दशांशाभिषेक-तशांश ब्राह्मण भोजन – पुरश्चरणमहं करिष्ये ।**' तदनन्तर भूत-शुद्धि प्राणायामादि कर तद्-देवता - सम्वन्धी मुद्राएँ बाँधकर अपनी पद्धति में बताई विधि के अनुसार इष्ट देवता की पूजा करे और तेजोरूपिणी देवता का हृदय में ध्यान कर प्रातः काल से लेकर मध्याह्नकाल तक जप करे । जप समाप्त होने पर होम और तर्पण करे ।

'कुलार्णव' में लिखा है कि इष्ट देवता का आवाहन कर जल- रूप पाद्यादि उपचारों से परिवार - गण - सहित इष्ट देवता की यथा विधि पूजा करे और परिवार - गण का एक-

एक अञ्जलि जल द्वारा तर्पण -करे । संख्या पूर्ण होने पर एक-एक अञ्जलि द्वारा पुनः तर्पण करना चाहिए ।

३५ अभिषेक - वाक्य -

'मूलं नमः अमुक - देवतामहमभिषिश्चामि इस वाक्य से कलश - मुद्रा द्वारा अपने मस्तक पर 'अभिषेक' करे । 'गौतमीय तन्त्र' में उक्त वाक्य इस प्रकार है - **मूलं नमोऽहममुकदेवतामभिषिञ्चामि।'**

'नील - तन्त्र' में शक्ति - विषय में 'अभिषेक' - वाक्य को इस प्रकार बताया है - **'मूलं अमुक - देवतामभिषिश्चामि नमः ।'** अभिषेक के बाद 'ब्राह्मण भोजन' कराकर निम्न वाक्य से गुरु देव को दक्षिणा प्रदान करे - **ॐ अद्येत्यादि अमुक - देवतायाः अमुक-मन्त्र-पुरश्चरण-कर्मणः साङ्गतार्थं दक्षिणामिदं काञ्चनं वह्नि दैवतं अमुक**

गोत्राय गुरवे तुभ्यमहं सम्प्रददे ।' इस प्रकार पुरश्चरण को अच्छिद्र हुआ समझ कर उसे साङ्ग करे ।

३६ ग्रहण - पुरश्चरण में सङ्कल्पादि

ग्रहण - पुरश्चरण में निम्न प्रकार सङ्कल्प कर जप करे - **'ॐ अद्यत्यादि राहु ग्रस्ते दिवाकरे (चंद्र ग्रहण में निशाकरे)अमुक गोत्र : श्रीअमुक- शर्मा अमुक-देवतायाः अमुक-मन्त्र- सिद्धि-कामो ग्रासाद् विमुक्ति-पर्यन्तं अमुक - देवताऽमुक-मन्त्र-जप-रूप-पुरश्चरणमहं करिष्ये ।'** फिर उसी दिन या अगले दिन स्नान करने के बाद ॐ **अद्येत्यादि अमुक - मन्त्रस्य कृतैतदमुक - ग्रहण - कालीन-अमुक- देवतामुक- मन्त्रे यत्-संख्यक जप तद् दशांश होम-तद्-दशांश-तर्पण-तद्दशांशाभिषेक-तद्-दशांश ब्राह्मण भोजन कमाण्यहं करिष्ये'** – इस प्रकार सङ्कल्प कर होमादि कार्य पूरा

करते हुए पूर्व - वत् दक्षिणा देकर पुरश्चरण को अच्छिद्र हुआ समझे ।

३७ कूर्म चक्र

जिस स्थान में पुरुष दीप्यमान होता है, उसे 'दीप - स्थान' कहते हैं। दीप-स्थान का आश्रय लेकर जो कर्म किया जाता है, वह फलप्रद होता है । इसके लिए जप- पूजादि के लिए मनोनीत स्थान में निम्न प्रकार कर्म चक्र बनावे । इस चक्र के जिस कोष्ठ में उक्त स्थान (ग्राम, नगर आदि) के नाम का पहला अक्षर -हो, उसे कूर्म का मुख समझे । मुख के दोनों ओर के कोष्ठ उसके हाथ; हाथों के नीचेवाले दो कोष्ठ उसकी कुक्षियों; कुक्षियों के नीचे वाले दो कोष्ठ उसके पैर

और शेष कोष्ठ उसकी पूंछ जाननाचाहिए । इसी प्रकार मध्य-वर्ती नौ कोष्ठों का भी विभाजन कर ले । मण्डप के जिस भाग में कूर्म का मुख हो, वहीं बैठकर जप - पूजादि कार्य करने से मन्त्र सिद्ध होता है । हाथवाले भाग में कार्य करने से साधक अल्पजीवी, कुक्षि में उदासीन, पैर में दुःखी और पूंछ में करने से बन्धन तथा उच्चाटनादि से पीड़ित होता है ।
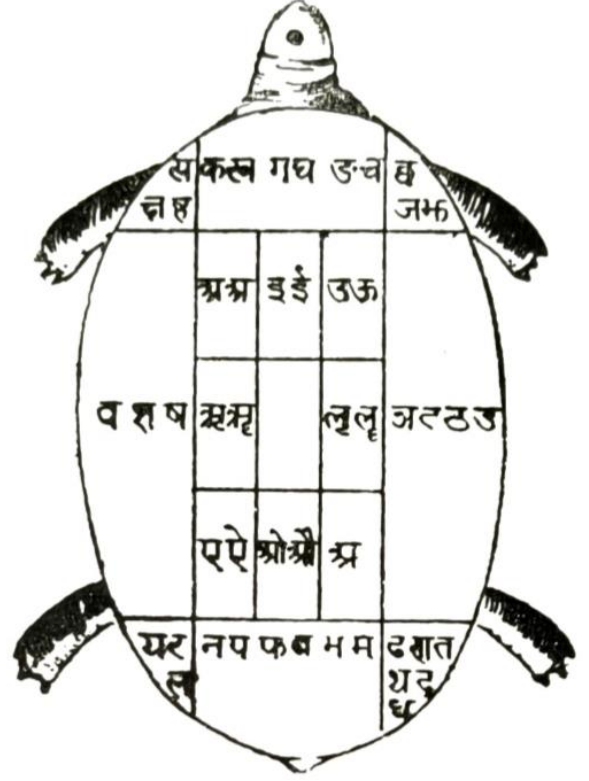
३८ मन्त्र संस्कार -

'गौतमीय तन्त्र' में मन्त्र के दस संस्कार बताए हैं - १ जनन, २ जीवन, ३ ताड़न, ४ बोधन, ५ अभिषेक, ६ विमलीकरण, ७ आप्यायन, ८ तर्पण, ६ दीपन और १० गुप्ति ।

'जनन' - संस्कार के लिए पहले 'मातृका यन्त्र' बनावे | यह यन्त्र स्वर्णादि पात्र में कुंकुम, चन्दन या भस्म से अङ्कित करना चाहिए । शक्ति मन्त्र के संस्कार में कुंकुम से; विष्णु मन्त्र में चन्दन से और शिव-मन्त्र में भस्म से लिखे । इस 'मातृका यन्त्र' से मन्त्र - वर्णों का पर्याय-क्रम से उद्धार करना 'जनन' कहलाता है । 'मातृका यन्त्र' के दो रूप हैं। दोनों रूप इस प्रकार हैं-

- उद्धृत सभी मन्त्र-वर्णों को पंक्ति-क्रम से प्रणव (ॐ) द्वारा पुटित कर एक-एक वर्ण का सौ बार जप करना 'जीवन' है। 'विश्वसार तन्त्र' के अनुसार प्रत्येक मन्त्र - वर्ण का सौ या दस बार जप करना चाहिए । मन्त्र के सभी वर्गों को अलग-अलग लिखकर 'यं' मन्त्र का उच्चारण करते हुए चन्दन - जल से प्रत्येक को सौ या दस बार ताड़ित करे - यह 'ताड़न' है । ताड़न दस या सौ बार करे । मन्त्र की
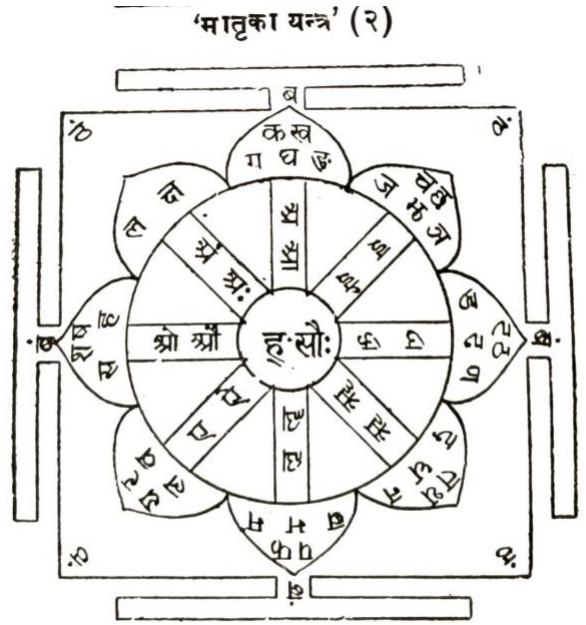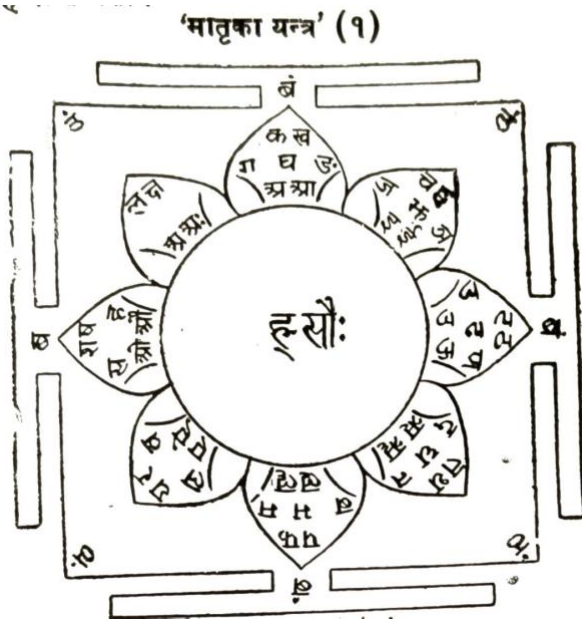
वर्णसंख्या के अनुसार

करवीर - कुसुमों से 'रं' मन्त्र का उच्चारण करते हुए उसे हनन करना 'बोधन' कहलाता है । सभी मन्त्रों को लिख कर वर्ण-संख्यक रक्त करवीर - पुष्पों द्वारा 'रं' मन्त्र से एक एक बार सभी वर्णों को अभिमन्त्रित कर अश्वत्थ के पत्ते द्वारा तत्तन्मन्त्रोक्त विधान से सभी मन्त्र - वर्णों का सिवन करे । यही 'अभिषेक' है । सुषुम्णा के मूल और मध्य भाग में देय - मन्त्र का चिन्तन कर ज्योतिमन्त्र **'ॐ ह्रौं'** में मल-त्रय को दग्ध करना 'विमलीकरण' है । मन्त्र के सभी वर्णों को कुशोदक या पुष्पोदक द्वारा ज्योतिर्मन्त्र में आप्यायित करने का नाम 'आप्यायन' है । इसी ज्योतिर्मन्त्र द्वारा देय मन्त्र की वर्ण-संख्या के अनुसार जल से 'तर्पण' कराया जाता है । शक्ति- मन्त्र में मधु से, विष्णु - मन्त्र में कर्पूर - मिश्रित जल से और शिव मन्त्र में घी दूध से 'तर्पण' किया जाता है । **ॐ, ह्रीं' और 'श्रीं' -** इन तीन मन्त्रों द्वारा देय मन्त्र को पुटित कर १०८ बार जप करने से 'दीपन' होता है । अप्रकट रखने से मन्त्र का 'गुप्ति' संस्कार होता है । मन्त्र

के इन दस संस्कारों के करने के बाद मन्त्र ग्रहण करने से अभीष्ट फल मिलता है । - -

उपर्युक्त मल-त्रय ये हैं- १ आणव्य, २ मायिक और ३ कार्मण । 'प्रपंचसार' में लिखा है कि स्त्री से जो मल उत्पन्न होता है, वह 'मायिक मल' कहलाता है । पुरुष से उत्पन्न मल को 'कार्मण' और उभय-विध मल को 'आणव्य' कहते हैं ।

३६. कलावती दीक्षा-

दीक्षा के पहले दिन शिष्य उपवास रखे । दीक्षा के दिन वह नित्य कर्म से निपट कर 'स्वस्ति वाचन' के बाद सल्प करे । यथा - 'ॐ अथेत्यादि अमुक गोत्रः श्रीअमुक- देव- शर्मा धर्मार्थ-काम-मोक्ष प्राप्ति कामः अमुक देवतायाः अमुकाक्षर -मन्त्रदीक्षामहं करिष्ये ।' सङ्कल्प के बाद गुरु का धरण

करे । इसके लिए शिष्य हाथ जोड़ कर गुरु से कहे - ॐ साधु भवानास्ताम् ।' गुरु कहे – 'ॐ साध्वहमासे ।' फिर शिष्य कहे- 'ॐ अर्चयिष्यामो भवन्तं भौर गुरु कहे- 'ॐ अर्चय' । तब शिष्य गन्ध, पुष्प, वस्त्र और अलङ्कार द्वारा गुरु की पूजा कर गुरु के दाहने जानु को स्पर्श करते हुए निम्न वाक्य द्वारा 'वरण' करे - 'ॐ अद्येत्यादि अमुक गोत्रः श्रीअमुकदेव-शर्मा श्रीअमुक-देवतायाः मत्कर्तृ कामुक-मन्त्र- दीक्षा - कर्मणि अमुकगोत्रं श्रीअमुक - देव-शर्माणमेभिः गन्धादिभिरभ्यर्च्य गुरुत्वेन भवन्तमहं वृणे ।' उत्तर में गुरु कहे - ॐ वृतोऽस्मि ।' फिर शिष्य कहे - 'ॐ यथाविहितं गुरु- कर्म कुरु ।' गुरु कहे — 'ॐ यथा - ज्ञानं करवाणि ।' इसके बाद गुरु आचमन कर द्वार - देश में सामान्यार्घ्य स्थापित करे । अपने बाएँ भूमि पर त्रिकोण - वृत्त चतुरस्र मण्डल बनाकर उस पर 'ॐ आधार- शक्तये नमः' से पूजन करे। फिर 'फट्' से अर्घ्य पात्र को धोकर मण्डल के ऊपर आधार और आधार पर शङ्खादि अर्घ्य

पात्र स्थापित करे। 'नमः' मन्त्र का उच्चारण करते हुए जल से अर्घ्य पात्र को भर दे और अंकुश मुद्रा द्वारा 'ॐ गङ्गे च' इत्यादि मन्त्र से सूर्य - मण्डल से तीर्थों का आवाहन कर 'ॐ' से अर्घ्य - पात्र में गन्ध, पुष्प छोड़े और उसे 'धेनु-मुद्रा' दिखावे । तदनन्तर अर्घ्य के ऊपर 'ॐ' का आठ या दश बार जप करे। विशेषार्ध्य के नियम नुसार आठ ही बार जप समझना चाहिए, किन्तु श्यामा आदि देव बाओं के सम्बन्ध में दस बार जप करे। 'भैरवी - तन्त्र' में लिखा है कि पात्र को जल से भर कर प्रणव का दस बार जप करे।

इसके बाद 'फट' से अर्घ्योदक द्वारा द्वार का अभ्युक्षण कर द्वारदेवताओं की पूजा करे। यथा-द्वार के ऊपरी काष्ठ में- ॐ विघ्नाय नमः, ॐ महालक्ष्म्यै नमः, ॐ सरस्वत्यै नमः। दाहनी शाखा मेंॐ विघ्नाय नमः, ॐ गङ्गायै नमः, ॐ यमुनाये नमः । बाँई शाखा में ॐ क्षेत्र - पालाय नमः, ॐ गङ्गायै नमः, ॐ यमुनायै नमः और देहली में ॐ अस्त्राय फट् । यह पूजन पुष्प और जल से करे। प्रत्येक द्वारदेवता की

अलग-अलग पूजा करने में यदि असमर्थ हो, तो 'ॐ द्वार-देवताभ्यो नमः' से एक ही बार में सभी देवताओं का एक साथ पूजन किया जा सकता है ।

त्रिपुरसुन्दरी आदि की पूजा में द्वार पूजा 'स्वतन्त्र तन्त्र' में लिखी है । यथा— गणेश, क्षेत्र - पाल, योगिनी, वटुक, गङ्गा, यमुना और सरस्वती - इन सब देवताओं की पूजा द्वार देश में करे । विष्णुपूजा में नन्द, सुनन्द, चण्ड, प्रचण्ड, बल, प्रवल, भद्र, सुभद्र, विघ्न और वैष्णव- इन सबकी पूजा बताई है। पूजा 'ॐ नन्दाय नमः' आदि क्रम से करे ।

फिर गुरु दाहने पैर को आगे कर बाँईं शाखा को छते और दाहने अङ्ग को सिकोड़ते हुए मण्डप में प्रवेश करे । मण्डप के बीच में जाकर नैर्ऋत कोण में 'ॐ वास्तु-पुरुषाय नमः' और 'ॐ ब्रह्मणे नमः' से पूजन करे । तव देय मन्त्र का उच्चारण करते हुए दिव्य दृष्टि से देखकर दिव्य विघ्न राशि

को उत्सारित करे और 'अस्त्राय फट्' से जल धारा- वेष्ठन द्वारा आकाश स्थित विघ्न तथा बाँईं एड़ी से भूमि पर तीन बार आघात कर भूमिगत विघ्न दूर करे | फिर 'फट् ' मन्त्र का सात बार जप कर हाथ में 'विकिर' लेकर निम्न मन्त्र पढ़ते हुए उन्हें चारों ओर फेंक दे—

ॐ अप - सर्पन्तु ते भूता, ये भुवि संस्थिताः ।

ये भूता विघ्न - कर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ॥

लाज, चन्दन, श्वेत सरसों, भस्म, दूब, कुश और अक्षत – ये सब 'विकिर' कहलाते हैं ।

'शारदा तिलक' में लिखा है कि नाराच मुद्रा से अक्षत लेकर 'ॐ अस्त्राय फट् ' कहते हुए उन्हें गृह- मध्य में फेंक कर सब विघ्नों की शान्ति करे । 'अपसर्पन्तु ते' इत्यादि उक्त मन्त्र से विघ्न दूर करे |

'सम्मोहन तन्त्र' में लिखा है कि इसके बाद 'ह्रीं आधार-शक्तिकमलासनाय नमः' से आसन - पूजा कर आसन को स्पर्श कर यह विनियोग पढ़ें- ॐ आसन मन्त्रस्य मेरुपृष्ठ ऋषिः, सुतलं छन्दः, कूर्मो देवता, आसन-परिग्रहे विनियोगः । फिर-

ॐ पृथ्वि ! त्वया धृता लोका, देवि! त्वं विष्णुना धृता ।

त्वं च धारय मां नित्यं पवित्रं कुरु चासनम् ॥ "

यह पढ़कर स्वस्तिकादि आसन पर बैठकर विनोत्सारण करे । 'तन्त्रसार' में लिखा है कि चाहे पहले विघ्नोत्सारण कर ले, तब आसन पर बैठे । अब 'पञ्च गव्य' - द्वारा मूल मन्त्र से मण्डप का शोधन करे । 'पञ्च-गव्य' सम भाव में या इस प्रकार ग्रहण करे- दुग्ध ८ तोला, गौमूत्र ८ तोला, घृत ८ तोला, गो-मय २ तोला और दधि १ गण्डूष । मूल मन्त्र से 'पञ्च गव्य' को अभिमन्त्रित करे। ऐसे 'पञ्च गव्य' से सब द्रव्यों की शुद्धि होती है और सब पाप दूर हो जाते हैं ।

तदनन्तर गुरु अपने दाहने पूजा- द्रव्य, बाँएँ सुगन्धित जल से भरा घड़ा और पीछे हाथ धोने के लिए एक पात्र रखे । सब दिशाओं में घी के दीपक जलाकर हाथ जोड़ कर बाँएँ - ॐ गुरुभ्यो नमः, ॐ परम गुरुभ्यो नमः, ॐ परापर - गुरुभ्यो नमः', दाएँ -- ॐ गणेशाय नमः', मस्तक पर - ॐ अमुक - देवतायै नमः' से नमस्कार करे । फिर 'फट् ' से गन्ध - पुष्प द्वारा कर - शोधन करे अर्थात् बाँएँ हाथ से गन्ध-युक्त पुष्प लेकर उसे दोनों हाथों से मले और 'फट् ' मन्त्र पढ़ते हुए उसे सूंघ कर भूमि में फेंक दे। फिर क्रमशः ऊपर की ओर तीन बार ताली बजाकर छोटिका मुद्रा से दसों दिशाओं का बन्धन करे । तब 'वं' से जल-धारा द्वारा अपने देह को वेष्ठित कर यह समझे कि मैं वह्नि - रूप प्राकार से वेष्ठित हूँ । इसके बाद क्रमशः भूत - शुद्धि, मातृका - न्यास, प्राणायाम, पीठ-न्यास, ऋष्यादिन्यास, मन्त्र - न्यास, मुद्रा - प्रदर्शन, ध्यान और मानस पूजन कर विशेषार्घ्य स्थापित करे ।

'अर्ध्य' और 'पाद्य' प्रत्येक के तीन-तीन पात्र और 'आचमनीय' आदि के भी तीन पात्र स्थापित करे । इसमें असमर्थ हो, तो एक ही पात्र से सारे कार्य करे । अन्य आगमानुसार छ: 'आचमनीय पात्र' स्थापित करने का विधान है ।

'पुरश्चरण चन्द्रिका' में लिखा है कि एक ही पात्र से 'पाद्य', 'अर्घ्यं' और 'आचमनीय' आदि प्रदान करे, किन्तु यह अति अशक्तअवस्था के लिए है ।

'नव- रत्नेश्वर' में लिखा है कि 'सामान्यार्घ्य' और 'विशेषार्घ्य' - ये दो पात्र तो स्थापित करने ही होंगे। इन्हें एक ही पात्र में कदापि स्थापित न करे क्योंकि ऐसा करने से मन्त्र पराङ्मुख हो जाता है।

और साधक दरिद्र होकर पर-लोक में पशुत्व को प्राप्त करता - राघव भट्ट- धृत-वचन के अनुसार शिव और सूर्य

पूजा के अतिरिक्त अन्य सभी पूजाओं में अब्ज (शङ्ख) पात्र में 'अर्घ्य स्थापन' प्रशस्त है ।

'लिङ्ग-पुराण' में 'अर्घ्य पात्र' का परिमाण यह लिखा है - ३६ अंगुल का अर्घ्य - पात्र उत्तम, २४ अंगुल का मध्यम और १२ अंगुल का अधम है ।

अपने बाँईं ओर त्रिकोण - मण्डल बनाकर उस पर त्रिपद रखे और 'फट्' से शङ्ख को धोकर उसे त्रिपद पर स्थापित करे। तब 'नमः' से गन्ध, पुष्प, दूर्वा और अक्षत उस 'अर्घ्य - पात्र' में डालकर मूल मन्त्र और विलोम मातृका - मन्त्र - "क्षं ळं हं सं षं शं, वं लं रं यं मं मं बं ह फं पं, नं धं दंथं तं णं ढं डं ठं टं, जं झं जं छं चं, ङं घं गं खं कं, अः भं औंओं ऐं एं लृ ऋ ं ॠ ऊं उं इं इं आं अं" - से उसे जल से भर दे। फिर - 'मं वह्नि मण्डलाय दश कलात्मने नमः' से त्रिपद पर, 'अं सूर्य - मण्डलाय द्वादश - कलात्मने नमः' से शङ्ख में और 'उं सोममण्डलाय षोडश - कलात्मने नमः' से जल में पूजा

कर मूल - मन्त्र से 'अंकुश - मुद्रा' द्वारा जल को आलोड़ित करते हुए सूर्य - मण्डल से तीर्थों का आवाहन करे --

ॐ गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति !

नर्मदे सिन्धु कावेरि ! जलेऽस्मिन् सन्निधि कुरु ॥

इसके बाद अपने हृदय में देवता का आवाहन करे । यथा-। ॐ अमुकि देवि इहावह इह तिष्ठ । फिर 'ॐ' से दोनों तर्जनियों से अवगुण्ठन, ' वषट्' से ' गालिनी - मुद्रा' - प्रदर्शन और 'वौषट्' से जल का दर्शन कर अङ्ग-न्यास के मन्त्रों से 'सकलीकरण' करे । तब गन्ध - पुष्प से 'अर्घ्य पात्र' में देवता की पूजा करे और 'मत्स्य-मुद्रा' से आच्छादन कर मूल मन्त्र का आठ बार जप करे ।

तदनन्तर 'व' से 'धेनु- मुद्रा' दिखाकर 'फट्' से संरक्षण करे और 'अर्घ्य पात्र' का कुछ जल 'प्रोक्षणी पात्र' में डालकर उसी जल से मूल मन्त्र द्वारा अपने शरीर तथा पूजा सामग्री का तीन बार अभ्युक्षण करे । फिर पीठ - न्यास के

क्रम से अपने शरीर में गन्ध पुष्प से धर्मादि की पूजा करे। यथा-

ॐ - दक्षिण - स्कन्धे ॐ धर्माय नमः। वाम - स्कन्धे ॐ ज्ञानाय नमः। बामौरौ ॐ वैराग्याय नमः। दक्षिणोरी ॐ ऐश्वर्याय नमः। वाम पार्श्वे ॐ अज्ञानाय नमः। नाभौ ॐ अवैराग्याय नमः। दक्षिण पार्श्वे ॐ अनंश्वर्याय नमः। हृदये ॐ अनन्ताय नमः, ॐ पद्माय नमः, अं अर्क मण्डलाय द्वादश- कलात्मने नमः, उं सोम-मण्डलाय षोडश कलात्मने नमः, मं वहिन - मण्डलाय दश- कलात्मने नमः, सं सत्त्वाय नमः, रं रजसे नमः, तं तमसे नमः, आं आत्मने नमः, अं अन्तरात्मने नमः, पं परमाहमने नमः, ह्रीं ज्ञानात्मने नमः।

'शारदा - तिलक' में लिखा है कि इस प्रकार धर्मादि समस्त पीठदेवताओं की पूजा कर हृत् - पद्म के मध्य में पूर्वादि केशरों में पीठशक्तियों की और हृदय में मूल देवता की पूजा करे।

इस विषय में 'निबन्ध' में लिखा है कि नैवेद्य को छोड़ गन्धादि उपचारों से पूजन करे। फिर मस्तक, हृदय, मूलाधार, पाद और सर्वाङ्ग—इन पाँच स्थानों में मूल मन्त्र से पाँच पुष्पाञ्जलियाँ प्रदान कर यथा-शक्ति मूल-मन्त्र का जप करे और ॐ गुह्याति-गुह्य गोत्री त्वं' इत्यादि मन्त्र से जप सम्पूर्ण करे । 'निबन्ध' में ही इस सम्बन्ध में लिखा है कि एकाग्र मन से पांच पुष्पाञ्जलियाँ देकर उक्त पाँच स्थानों में न्यास करे । ये सभी कार्य 'प्रोक्षणी - पात्र' के जल से प्रोक्षण कर समाप्त करे।

इसके बाद 'प्रोक्षणी-पात्र' के जल को फेंककर उसे फिर पूर्व-वत् भरे और बाह्य पूजा आरम्भ करे । पहले 'शारदा-तिलकोक्त' सर्वतोभद्रादि मण्डलों में से कोई एक मण्डल बनाकर 'ॐ मण्डलाय नमः' से उसकी पूजा करे। फिर धान्य से कर्णिका के मध्य भाग की पूजा कर अक्षत छोड़े और तब उस पर दर्भ (कुश) बिछाकर उसके ऊपर अक्षत-युक्त विष्टर (कुश) स्थापित करें । इसके बाद मण्डल पर

पूजा. करे; यथा—'ॐ आधारशक्त्यै नमः, ॐ कूर्माय नमः' आदि तत्तत्पटलोक्त क्रम से पीठ - देवताओं का पूजन कर मण्डल पर प्रदक्षिणाक्रम से 'ॐ यं धूमार्चिषे नमः' आदि आगे लिखी दस वह्नि - कलाओं को पूजा करे । फिर सुवर्णादि के बने 'कुम्भ' को 'फट् ' मन्त्र से धो कर चन्दन, अगरु और कपूर से धूपित करे और त्रिगुण-सूत्र से उसे वेष्ठित कर गन्ध - पुष्प से 'ॐ कुम्भाय नमः' से उसकी पूजा करे। तब - कुश, अक्षत और नव रत्न 'कुम्भ' में छोड़कर 'ॐ' का उच्चारण करते तथा 'कुम्भ' एवं पीठ देवता के ऐक्य का ध्यान करते हुए उसे पीठ के ऊपर स्थापित करे ।

'गौतमीय तन्त्र' में लिखा है कि अपनी सामर्थ्यानुसार स्वर्ण, रौप्य, ताम्र या मिट्टी का 'कुम्भ' प्रदान करे। इसमें छल न करें क्योंकि ऐसा करने से कार्य निष्फल होता है । यह 'कुम्भ' ३६ अंगुल का यथोचित विस्तार व उन्नति से युक्त हो या १६ अथवा १२ अंगुल ऊँचा हो । इससे छोटा न हो ।

अब 'कुम्भ' के ऊपर प्रदक्षिणा क्रम से 'ॐ कं भं तपिन्यै नमः' आदि मन्त्रों से सूर्य की द्वादश कलाओं की पूजा करे। फिर आत्मा और मन्त्र के ऐक्य की भावना कर देय मन्त्र तथा मातृका - मन्त्र का प्रतिलोम जप कर मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुए 'कुम्भ' को देवता समझ उसे आकन्दादि क्षीरि-वृक्ष के कषाय या पलाश वल्कल के कषाय या तीर्थ-जल या गन्ध - पुष्प - सुवासित जल से पूर्ण करे । तव प्रदक्षिणा क्रम से उस जल में चन्द्रमा की अमृतादि षोडश कलाओं का न्यास कर 'ॐ अं अमृतायै नमः' आदि मन्त्रों से उनकी पूजा करे। फिर क्षीरि वृक्ष - कषायादि से अन्य शङ्ख पात्र को तीर्थजल से भर गन्धाष्टक द्वारा आलोड़ित कर उसी जल से सभी कलाओं का आवाहन कर उनकी पूजा करे ।

'शारदा - तिलक' में लिखा है कि शिव, विष्णु और शक्ति-भेद से गन्धाष्टक तीन प्रकार का है-

१ शक्ति - गन्धाष्टक - चन्दन, अगरु, कर्पूर, कृष्ण-राठी, कुंकुम, गोरोचन, जटामासी, गाठियाला;

२ विष्णु - गन्ध - चन्दन, अगरु, वाला, कूड़, कुंकुम, श्वेत बैण का मूल, जटामासी, देवदारु;

३ शैव-गन्ध—चन्दन, अगरु, कर्पूर, तमाल, बाला, कुंकुम, रक्तचन्दन, कूड़ ।

वह्नि की दश-कलाओं का पूजन क्रम यह है -- 'धूमार्चिरादि दक्षकला इहागच्छत आगच्छत, इह तिष्ठत तिष्ठत, इह सन्निहिता भवत से आवाहन कर प्रतिलोम से मूल मन्त्र का जप कर यन्त्र के देवता - का ध्यान करते हुए उक्त कलाओं की प्राण प्रतिष्ठा करे । यथा-आं ह्रीं क्रों हंसः धूमार्चिरादि-वह्नि दश-कलानां प्राणाः इह प्राणाः, आं ह्रीं को हंसः धूमार्चिरादि-वह्नि दश-कलानां जीव इह स्थितः, आं ह्रीं क्रों हंसः धूमार्चिरादि-वह्नि-दश-कलानां सर्वेन्द्रियाणि इह

स्थितानि आं ह्रीं क्रों हंसः धूमचिरादि वहिन दश-कलानां वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्र- प्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।

इस प्रकार प्राण प्रतिष्ठा कर ॐ धर्माचिरादि देवताभ्यो एव गन्धो नमः' से पञ्चोपचार से प्रत्येक देवता की पूजा करे । प्रत्येक दैवता का नामोल्लेख इस प्रकार करे --यं धूमार्चिषे नमः । रं ऊष्मा ये नमः । लं ज्वलिन्यै नमः । वं ज्वालिन्ये नमः | शं विस्फुलिङ्गिन्ये नमः । षं सुश्रियै नमः । सं सुरूपाय नमः । हं कपिलाये नमः । ळं हव्यवाहनाय नमः । क्षं कव्यवाहनाय नमः ।

समर्थ हो, तो प्रत्येक का आवाहन कर पाद्यादि द्वारा पूजन करे । इसी प्रकार सूर्य की तपिन्यादि द्वादश कलाओं का आवाहनादि और प्राण-प्रतिष्ठा कर प्रत्येक की पूजा करे । यथा - कं भं तपिन्यै नमः । खं बं तापिन्यै नमः । गं फं धूम्रायै नमः । घं पं मरीच्यं नमः । ङं नं ज्वलिन्यै नमः । चं धं रुच्यै नमः । छं दं सुषुम्नायै नमः । जं ञं भोगदायै नमः । झं तं

विश्वायै नमः । वं णं बोधिन्यै नमः । टं दं वारिण्यै नमः। ठं डं क्षमायै नमः ।

समर्थ हो, तो प्रत्येक का आवाहनादि पूजा करे ।

इसी प्रकार चन्द्रमा की 'अमृता' आदि षोडश कलाओं का आवाहनादि कर प्रत्येक की पूजा करे । यथा - अं अमृतायै नमः । अं मानदायै नमः । इं पूषायै नमः । इं तुष्ट्यै नमः । जं पुष्टायै नमः | ॐ रत्यै नमः । ऋ धृत्यै नमः । ऋ शशिन्यै.नमः । लृ चन्द्रिकायै नमः । लं कान्त्यै नमः । एं ज्योत्स्नायै नमः । ऐं श्रियै नमः । ओं प्रीत्यै नमः | औं अङ्गदायै.नमः । अं पूर्णायै नमः । अः पूर्णामृतायै नमः ।

यदि समर्थ हो, तो प्रत्येक का आवाहन कर पूजन करे। अब सृष्ट्यादि दस कलाओं का आवाहनादि कर प्रत्येक की पूजा करे । यथा -- कं सृष्टयै नमः । ऋद्ध्यै नमः । गं स्मृत्यै नमः । धं मेधायै नमः । ङं कान्त्यै नमः । चं लक्ष्म्यै नमः । छं धृत्यै

नमः । वं स्थिर। यै नमः । झं स्थित्यं नमः । ञं सिद्ध्यै नमः ।

यदि समर्थ हो, तो 'ॐ हंसः शुचिसद् - वसुरन्तरीक्ष सद्धोता वेदिवदतिथिर्दुरोणसन्नृषद् - वर-सद् ऋत-सद्ध्योम सदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं वृहत्' इस मन्त्र का जप करने के बाद आवाहन कर सृष्ट्यादि दश कलाओं में से प्रत्येक का पूजन करे। अब पूर्ववत् आवाहनादि कर जयादि दश - कलाओं की पूजा करे । यथा-टं जयायै नमः । ठं पालिन्यै नमः । डं शान्त्यै नमः । ढं ऐश्वर्ये नमः । णं रत्य गमः । तं कामिकायै नमः । थं वरदायै नमः । दं ह्लादिन्यै नमः । धं प्रीत्यै नमः । नं दीर्घायै नमः ।

समर्थ हो, तो 'ॐ प्रतद् - विष्णुस्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरों गिरिष्ठा, यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा' - इस मन्त्र का जप करने के बाद आवाहन

कर जयादि प्रत्येक कला का पूजन करे। तदनन्तर पूर्व-वत् आवाहनादि कर तीक्ष्णादि देवताओं की पूजा करे। यथा— पं ताक्ष्णायै नमः । फं रौद्रायै नमः । बं भयायै नमः । भं निद्रायै नमः । मं तन्द्रायै नमः । यं क्षुधायै नमः । रं कोधिन्यै नमः । लं क्रियायै नमः । वं उत्कारिण्यै नमः । शं मृत्यवे नमः ।

समर्थ हो, तो 'ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्ध पुष्टि - वर्द्धनन् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात्' का जप करने के बाद आवाहन कर तीक्ष्णादि उक्त देवताओ का पूजन करे। अब पूर्वोक्त क्रम से पीतादि देवताओं की पूजा करे। यथा -- षं पीतायै नमः । सं श्वेतायै नमः । हं अरुणायै नमः । ळं असितायै नमः । क्षं अनन्तायै नमः ।

समर्थ हो, तो 'ॐ तद् - विष्णुः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम्' से विष्णु का स्मरण करने के बाद पीतादि प्रत्येक देवता का अलग-अलग आवाहन कर पाद्यादि से पूजन करे । फिर पूर्व-वत् निवृत्त्यादि षोडश कलाओं का आवाहनादि और प्राणप्रतिष्ठा कर प्रत्येक का पूजन करे । यथा -- अं निवृत्यै नमः । आं प्रतिष्ठायै नमः । इं विद्यायै नमः । ईं शान्त्यै नमः । उं गन्धिकायै नमः । ॐ दीपिकायै नमः । ऋ रेचिकायै नमः । ॠ मोचिकायै नमः ।ल परायै नमः । लृ सूक्ष्मायं नमः । एं सूक्ष्मामृतायै नमः । ऐ ज्ञानामृतायै नमः । ओं आप्यायिन्यै नमः । औं व्यापिन्यै नमः । अं व्योमरूपाये नमः । अः अनन्ताय नमः ।

समर्थ हो, तो 'ॐ तद् विप्रासो विपण्यवो जागृवांसः समिन्धते विष्णोर्यत् परमं पदं, विष्णुर्योनि प्रकल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु । आसिश्वतु प्रजपतिर्धाता गर्भं दधातु ते । ॐ गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भ देहि सरस्वति ! गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्कर-स्रजौ - का जप करने के बाद

आवाहनादि कर निवृत्त्यादि उक्त प्रत्येक कला की पूजा करे । अब चन्द्र-कला-स्वरूप शङ्खस्थ क्वाथ को कुम्भ में डाल दे । इसके बाद अश्वत्थ, पनस और आम्र - पल्लवों को इन्द्रवल्ली - लता द्वारा वेष्ठित कर उसे कल्प वृक्ष समझते हुए उससे कुम्भ का मुख ढँक दे । फिर उस कुम्भ- मुख पर फल और अक्षत -युक्त 'शराव' को कल्प - वृक्ष का फल समझते हुए स्थापित करे । तदनन्तर दो निर्मल भौम-वस्त्रों से 'कुम्भ' को वेष्ठित कर 'कुम्भ' में मूल - मन्त्र से देवमूर्ति की कल्पना करते हुए यथोक्त-रूप देवता का ध्यान कर उसका पूजन करे । यथा-

पहले 'मूलं इहागच्छ इहागच्छ, 'इह तिष्ठ इह तिष्ठ, इह सन्निधेहि, इह सन्निधेहि' से आवाहनादि कर 'हूं' से अवगुण्ठन करे । फिर देवता के अङ्गों में षडङ्ग - न्यास कर 'वं' से धेनु मुद्रा द्वारा अमृतीकरण और परमीकरण मुद्रा द्वारा परमीकरण करे । तब प्राणप्रतिष्ठा कर षोडशोपचार पूजा करे ।

'मूलं इदमासनं अमुक - देवतायै नमः' से रजतादि - निर्मित आसन प्रदान कर 'अमुक - देवि ! स्वागतं ते' से स्वागत करे। फिर 'मूलं एतत् पाद्यं अमुक- देवतायै नमः' से देवता के चरणों में पाद्य प्रदान करे । श्यामाक (तृण - विशेष, श्यामा घास), दूर्वा, पद्म और अपराजिता से पाद्य की रचना करे । गन्ध, पुष्प, अक्षत, यव, कुशाग्र, तिल, सरसों और दूर्वात्मक अर्घ्य 'मूलं अमुक- देवतायै स्वाहा' से देवता के मस्तक पर प्रदान करे । मतान्तर है कि विष्णु - पूजा में अर्घ्यादि से आरम्भ कर पाद्यादि प्रदान करे। इसके बाद जातीफल, लवङ्ग और कङ्कोल - मिश्रित जल ' मूलं इदमाचमनीयं अमुक - देवतायै स्वाहा' से देवता के मुख में तीन बार आचमनीय- रूप प्रदान करे ।

फिर 'स्वधा' मन्त्र से मधुपर्क और पुनराचमनीय प्रदान करे। आचमनीय के लिए कहीं-कहीं 'इमाचमनीयं अमुक- देवताये वं स्वधा' भी दिया है । 'मधुपर्क' स्वधा' से मधुपर्क

दे । घृत, दधि और मधु इनको मिलाने से 'मधुपर्क' बनता है। 'पुनराचमनीयं स्वधा' से पुनराचमनीय एवं 'स्नानीयं निवेदयामि' से स्नानीय जल देकर वस्त्रयज्ञोपवीतादि प्रदान करे। फिर 'आभरणं नमः' से आभूषण ओर 'एष गन्धो नमः' से गन्ध निवेदित करे । चन्दन, कर्पूर और कालागरु इत्यादि से गन्ध द्रव्य प्रस्तुत करे । तदनन्तर मूल मन्त्र से पुटित मातृका - वर्ण द्वारा मातृका - न्यास के तत्तत् स्थानों में पूजा कर 'एतानि पुष्पाणि अमुक- देवतायै वौषट्' से पुष्प प्रदान करे । सभी द्रव्यों के निवेदन में मूल मन्त्र उच्चारणीय है । इसके बाद आवरण- पूजा करे । तब देवता के निम्न देश में अर्थात् अधोमुख कर धूप प्रदान करे।

'शारदा - तिलक' में लिखा है कि शर्करा, घृत और मधु में गुग्गुल, अगरु तथा चन्दन मिलाने से 'षडङ्ग - धूप' बनती है, जो सभी देवों को प्रिय है । १ कड़, २ हरड़, ३ गुड़, ४ जटामासी, ५ देवदारु, ६ लाक्षा, ७ अगरु, ८ तेजपत्र, ६

सरल काष्ठ, १० नखी और ११ मुखा - इन ११ वस्तुओं से बत्ती बनाकर धूप प्रदान करे। उक्त ग्यारह वस्तुओं मैं गुग्गुल, चन्दन, बाला, धूना और शैलज मिलाने से षोडशाङ्ग धूप होती है, जो देव और पितृ कर्म में प्रशस्त है । १ मधु, २ मुखा, ३ घृत, ४ चन्दन, ५ गुग्गुल, ६ अगरु, ७ शैलज, सरल - काष्ठ, ६ शिला - रस और १० श्वेत सरसों से दशाङ्ग धूप प्रस्तुत होती है । इसके बाद कर्पूर - मिश्रित बत्ती से दीप दिखावे ।

'शारदा' - तन्त्र के अनुसार घृत या तिल तेल सहित सुगन्धित दीप में उक्त बत्ती जलाकर ऊर्ध्वमुख कर उसे दिखाना चाहिए । उपचारों के बीच-बीच में जल प्रदान करे। 'मधुपर्क' और वस्त्र देने के बाद आचमनीय प्रदान करे । तदनन्तर नवेद्य निवेदन करे । गन्धादि के सम्बन्ध में विशेष नियम ये हैं-

१ गन्ध मध्यमा, अनामिका और अंगुष्ठ - इन तीनों के अग्रभाग से मूल मन्त्र द्वारा प्रदान करे ।

२ पुष्प अंगुष्ठ और तर्जनी से यन्त्र या देवता के अज पर चढ़ावे।

३ धूप गन्ध के समान प्रदान करे। यथा - मध्यमा और अनामिका के मध्य-पर्व एवं अंगुष्ठ के अग्र भाग से धूप लेकर तीन बार उत्तोलन - पूर्वक गायत्री या मूल मन्त्र द्वारा उसे प्रदान करे। विशेष विधि यह है कि 'फट्' से धूप- पात्र को प्रोक्षित कर 'नमः' से उसकी पूजा करे | फिर 'फट् ' से घण्टा की पूजा कर घण्टा बजाते हुए गुग्गुल जलावे और 'ॐ जय-ध्वनि मातः !' से घण्टा की पूजा कर उसे बजाते हुए उत्तम धूप प्रदान करे। मिट्टी, आसन और घट पर रख कर धूप प्रदान न करे।

'गौतमीय तन्त्र' में लिखा है कि देवता की दृष्टि - पर्यन्त धूप का उत्तोलन कर वाम-भाग - स्थित घण्टे को बजाते हुए

दाहने हाथ से धूप समर्पित करे । धूप को बाँएँ या आगे रखकर निवेदित करे, उसे दाँईं ओर न रखे ।

४ दीप दान में भी उक्त प्रकार घण्टा का प्रयोग करे । उसे देवता के दाँएँ या आगे रखकर निवेदित करे, बाँईं ओर दीप न रखे । विशेष बात यह है कि घी का दीपक दाँईं ओर और तेल का बाँई ओर रखकर तथा श्वेत - वर्ण की बत्तीवाला दीपक दाईं ओर और रक्त वर्ण की बत्तीवाला बाँईं ओर रखकर प्रदान करे । सम्मुख रखने कोई नियम नहीं है अर्थात् सभी प्रकार के दीपक सामने रखकर निवेदित किए जा सकते हैं ।

५ नवेद्य दाएँ या बाँएँ या सामने रखकर तत्त्व - मुद्रा से प्रदान करे । उसे पीछे की ओर न रखे । पक्वान्न बाँएँ और आमान्न दाएँ रखकर निवेदन करे ।

'पुरश्चरण - चन्द्रिका' में लिखा है कि यदि बाँईं ओर अन्नादि रखा हो, तो वह अभोज्य और पानीय मदिरा - तुल्य होता है - यह साम्प्रदायिक मत है ।

'यामल' में लिखा है कि गन्ध, पुष्प और भूषण - इन सबको आगे रखकर समर्पित करे । दाएँ, बाँएँ आदि जो सङ्केत दिया है, वह देवता से सम्बन्धित है, साधक से नहीं अर्थात् देवता के दाएँ, बाँएँ इत्यादि ।

दीप और नैवेद्य यदि देवता के आगे रखकर निवेदित किए जायँ, तो घृत, तेल और पक्वापक्व का विचार नहीं किया जाता ।

तदनन्तर मूल मन्त्र से आचमनीय देकर तत्त्व - मुद्रासे ताम्बूल - प्रदान करे और नमस्कार कर मूल मन्त्र का अष्टोत्तर सहस्र या अष्टोत्तर शत बार जप करे । फिर 'गुह्याति०' आदि से जप का समर्पण करे ।

इसके बाद पूर्वोक्त प्रकार से देय मन्त्र के दस संस्कार कर गुरु शिष्य को सामने बैठाकर उसकी दोनों आँखों को 'फट' मन्त्र से वस्त्र द्वारा आच्छादित करे और उसकी अञ्जलि को फूलों से भर दे । फिर गुरु देय मन्त्र का उच्चारण करते हुए देवता - प्रीति के उद्देश्य से शिष्य-द्वारा उक्त फूलों को कलश में डलवा दे । तव शिष्य की आँखें खोल उसे दर्भासन पर बैठाकर भूत शुद्धि पूर्वक उसके शरीर में तत्तन्मन्त्रोक्त न्यास करे । तदनन्तर कुम्भस्थ देवता का पुनः पञ्च पचार - पूजन कर अलंकृत शिष्य को दूसरे स्थान पर बैठावे और मङ्गलाचरण - पूर्वक कलश को उठाकर उसके मुख पर रखे हुए कल्पवृक्ष-स्वरूप सभी पल्लवों को शिष्य के मस्तक पर रखकर मातृका मन्त्र का मन-ही-मन स्मरण करते हुए मूल मन्त्र से अभिमन्त्रित जलद्वारा वशिष्ठ-संहितोक्त मन्त्र-पाठ - पूर्वक शिष्य को अभिषिक्त करे ।

बचे हुए जल से शिष्य आचमन करे और वस्त्र धारणकर गुरु के समीप बैठे । गुरु यह ध्यान करे कि अपना देवता

शिष्य में संक्रान्त है और उभय देवता एक हैं । तब गन्धादि द्वारा देवता की पूजा कर 'ॐ सहस्रारे हुं फट् ' से शिष्य का शिखा बन्धन करे और तीन कुशपत्रों से शिष्य के शरीर में कला - न्यास करे । यथा-

चरण-तल से जानु-पर्यन्त - ॐ निवृत्त्यै नमः ।

जानु से नाभि-पर्यन्त—ॐ प्रतिष्ठायै नमः ।

नाभि से कण्ठ - पर्यन्त - ॐ विद्यायै नमः ।

कण्ठ से ललाट-पर्यन्त - ॐ शान्त्यै नमः ।

ललाट से ब्रह्मरन्ध्र - पर्यन्त - ॐ शान्त्यतीतायै नमः ।

पुनः - ब्रह्मरन्ध्र से ललाट - पर्यन्त - ॐ शान्त्यतीताय नमः।

ललाट से कण्ठ- पर्यन्त - ॐ शान्त्यै नमः ।

कण्ठ से नाभि- पर्यन्त - ॐ विद्यायै नमः ।

नाभि से जानु - पर्यन्त - ॐ प्रतिष्ठायै नमः ।

जानु से चरण-तल- पर्यन्त- ॐ निवृत्त्यै नमः ।

इसके बाद शिष्य के मस्तक पर हाथ रख देय मन्त्र का अष्टोत्तर - शत बार जप कर गुरु कहे- 'अमुक - मन्त्रं तेऽहं ददामि' और उसके हाथ में जल दे । शिष्य कहे- ' ददस्व ।'

'वशिष्ठ - संहिता' में लिखा है कि मन्त्र जप कर गुरु कहे- 'आवयोस्तुल्य-फलदो भवतु ।'

तदनन्तर ऋष्यादि संयुक्त मन्त्र शिष्य के दाहने कान में तीन बार और बाँएँ कान में एक बार सुनावे । 'गौतमीय तन्त्र' के अनुसार यह विधान द्विजाति के पक्ष में है, स्त्री तथा शूद्र के बाँएँ कान में तीन बार और दाएँ में एक बार मन्त्र सुनाना चाहिए ।

'रुद्रयामल' में लिखा है कि गुरु पूर्व मुख होकर पश्चिमाभिमुखी शिष्य के कान में मन्त्र सुनावे | फिर शिष्य गुरु के चरणों पर गिर कर कहे-

ॐ त्वत्- प्रसादादहं देव ! कृत-कृत्योऽस्मि सर्वतः ।

माया-मृत्यु- महा - पाशद्विमुक्तोऽस्मि शिवोऽस्मि च ॥

गुरु शिष्य को उठाते हुए कहे-

उत्तिष्ठ वत्स ! मुक्तोऽसि सम्यगाचारवान् भव ।

कीर्ति - श्री कान्ति पुत्रायुर्बलारोग्यं सदाऽस्तु ते ॥

'विश्वसार तन्त्र' में लिखा है कि गुरु से मन्त्र पाते ही शिष्य उसी समय एक सौ आठ बार जप करे ।

'शारदा - तिलक' में लिखा है कि गुरु से परमा विद्या प्राप्त कर गुरु, मन्त्र और देवता में ऐक्य समझते हुए एक सौ आठ बार जप करे -- यह वचन देवता के ध्यान पूर्वक जप करने

के विषय में है । ध्यान पूर्वक जप न कर सकने पर एक सहस्र जप करने का विधान है ।

'विश्वसार तन्त्र' के अनुसार गुरु अपनी शक्ति के रक्षार्थ उक्त मन्त्र का अष्टाधिक सहस्र या शत बार जप करे । 'यामल' का भी ऐसा ही वचन है । शिष्य गुरु के सम्मुख शत बार मन्त्र जप कर तीन दिन गुरु के निकट रहे । ऐसा न करने से सचारिणी शक्ति गुरु को प्राप्त होती है । अन्त में शिष्य कुश, तिल और जल लेकर निम्न सङ्कल्प पढ़ गुरु को सुवर्ण या काञ्चन प्रदान करे । यथा-

'ॐ अद्य कृतैतद् अमुक-- - देवतायाः अमुक-मन्त्र-ग्रहण-प्रतिष्ठार्थं दक्षिणामिदं सुवणं काश्वनं वा बह्नि देवतं अमुक गोत्राय अमुक शर्मणे गुरवे तुभ्यमहं सम्प्रददे ।' शरीर, अर्थ और प्राण -- सभी गुरु को निवेदन करना होगा । मन्त्र लेने के दिन से गुरु को प्रिय लगनेवाले कार्य अनन्य मन से करने होंगे । संसार में जो-जो वस्तुएँ

सबसे अधिक अपने को प्यारी हों, वे सब गुरु को प्रदान करे।

'स्वतन्त्र तन्त्र' में लिखा है कि गुरु की आज्ञानुसार सर्वस्व या उसका आधा या उसके आधे का आधा साक्षात् शिव स्वरूप गुरु को दक्षिणा में प्रदान करे। अन्यथा गुरु से शक्ति सञ्चारित होकर शिष्य में किस प्रकार संक्रान्त हो सकेगी?

'कुलामृत' में लिखा है कि वित्त - शाठ्य छोड़ समस्त कार्य करे क्योंकि वित्त-शठता करने से पुत्र, आयु, यश और धन - इन सबका नाश होता है। जो व्यक्ति गुरु देव को धोखा देकर धन सञ्चय करता है, वह उस धन का भोग नहीं कर पाता, राजा और चोर उसे हरण कर लेते हैं।

गुरु को आसनार्थ रक्त कम्बल, हारादि आभूषण, दूध देनेवालो गाय और पौत्रादि उपयोग करें -- ऐसी भूमि प्रदान करे। गुरु को वस्त्र - समन्वित स्वर्ण की दक्षिणा दे। गुरु को सन्तोष होने से इष्टमन्त्र भी सिद्ध होगा।

गुरु - को सन्तोष हुए बिना मन्त्र सिद्धि नहीं होती । उनके असन्तुष्ट होने पर मन्त्र अनिष्ट कर होता है । दीक्षा ग्रहण की सारी उपकरण - सामग्री गुरु देव को निवेदित करे । तदनन्तर अन्य ब्राह्मणों को मिष्ठान्न - पानादि और दक्षिणादि द्वारा सन्तुष्ट कर स्वयं भोजन करे ।

दीक्षा के दिन गुरु और शिष्य दोनों ही को उपवास न रखना चाहिए । 'योगिनी तन्त्र' में लिखा है कि यदि मन्त्र देने के बाद उस दिन गुरु उपवासी रहे, तो महाऽन्धकार नरक में कृमि होकर जन्म लेता है और शिष्य दीक्षित होकर उपवास करे, तो देवता उससे रुष्ट होकर उसे शाप देकर अपने स्थान को लौट जाती है ।

४० पञ्चायतनी - दीक्षा

'यामल' में लिखा है कि पञ्चायतनीदीक्षा में शक्ति, विष्णु, शिव, सूर्य और गणेश -- इन पाँच देवताओं के पाँच यन्त्र

अङ्कित कर उनमें पश्च-देवताओं को पूजा करनी होती है। इसमें विशेष नियम यह है कि यदि गुरु पञ्च- देवताओं में शक्ति की भावना प्रधान रूप से करे, तो उसका यन्त्र मध्य में स्थापित कर पूजा करे और इस यन्त्र के ईशान कोण में विष्णु, अग्नि कोण में शिव, नैर्ऋत कोण में गणेश एवं वायु-कोण में सूर्य का यन्त्र बना कर इन सबकी पूजा करे ।

यदि मध्य में विष्णु की पूजा करे, तो ईशान में शिव, आग्नेय में गणेश, नैर्ऋ त्य में विष्णु और वायव्य में भोग- मोक्ष दात्री अम्बिका का यन्त्र बनाकर उनकी पूजा करे। करे, तो ईशान में शिव, आग्नेय में वायव्य में स्वर्ग - मोक्ष प्रदात्री पार्वती की यदि मध्य में शङ्कर की पूजा सूर्य, नैर्ऋत्य में गणेश और पूजा करे ।

मध्य में यदि सूर्यदेव की पूजा करे, तो ईशान में शिव. आग्नेय में गणेश, नैर्ऋ त्य में विष्णु और वायव्य में स्वर्ग -साधिका भवानी का चक्र बनाकर उनकी पूजा करे । यदि मध्य में गणेश की पूजा करे, तो ईशान में विष्णु, आग्नेय में

शिव, नैर्ऋत्य में सूर्य और वायव्य में मोक्ष - दायिनी पार्वती की पूजा करे ।

इसी प्रकार का क्रम 'गणेश - विमर्षिणी- तन्त्र', 'रामार्चन - चन्द्रिका' और 'गौतमीय तन्त्र' में भी दिया है । उक्त स्थानों में उलट-फेर होने से देवता-गण दुःख, शोक और भय प्रदान करते हैं ।

'रामार्चन चन्द्रिका' में लिखा है कि अङ्ग-देवता - पूजन में आग्नेयादि कोण में गणेशादि देवताओं की पूजा का जो विधान है, वह राम और गोपाल-विषयक है। साम्प्रदायिकों के मत से ईशानादि कोणविधान वस्तुतः वैकल्पिक है ।

'गौतमीय तन्त्र' में उक्त देवताओं का पूजा - क्रम यह बताया कि गन्धादि द्वारा पूजन कर षडङ्ग - पूजा करे । फिर बीस बार मन्त्र जप कर नमस्कार -पूर्वक जप समर्पण करे ।

'सनत्कुमार तन्त्र' में लिखा है कि पीठ-पूजा के बाद अङ्ग - देवताओं की पूजा करे और तब प्राण प्रतिष्ठा, आवाहन, मुद्रा-प्रदर्शन, - -देव- ध्यान और देवता पूजन करे । प्रतिष्ठित प्रतिमादि यन्त्र - स्थल के लिए यह विधि है कि देवता को पुष्पाञ्जलि देने के बाद अङ्गताओं की पूजा करे।

'कुलावली' में लिखा है कि यन्त्र के अतिरिक्त अन्य आधार पर पूजा करे । एक पीठ पर अङ्ग-देवताओं को छोड़कर अन्य देवता की पूजा करने से देवता शाप देती है । एक देवता का आवाहन कर अन्य देवता की पूजा करने से साधक दोनों देवताओं से शापित होकर दुर्बुद्धि कहा जाता है । यहाँ अन्य देवता से अङ्ग - देवता से भिन्न देवता से तात्पर्य है ।

अङ्ग-देवता के मन्त्रों के सम्बन्ध में सिद्धादि विचार की आवश्यकता नहीं है । श्यामादि देवताओं की मन्त्र- दीक्षा में 'पञ्चायतनी दीक्षा' नहीं की जाती ।

'रुद्रयामल' में लिखा है कि श्यामा, भैरवी, तारा, छिन्नमस्ता, मञ्जुघोष और रुद्र-मन्त्र की दीक्षा में पञ्चाङ्ग - पूजा नहीं होती ।

'तत्त्वसार' में लिखा है कि सभी प्रकार की उप विद्याओं और षट् कर्मों की साधना में दीक्षादि तथा अङ्गादि-पूजा की आवश्यकता नहीं होती । ये कार्य दीक्षा बिना केवल उपदेश लेकर करे ।

४१. संक्षिप्त दीक्षा-पद्धति

'सर्वतोभद्र - मण्डल' के ऊपर नवीन कुम्भ स्थापित कर उसे जल से भरे । गन्ध- पुष्प से इस कुम्भ की पूजा कर वस्त्र से इसे आवेष्ठित कर इसके भीतर सर्वोषधि और नव-रत्न डाले । फिर कुम्भ के मुख पर पश्च पल्लव रख देवता का यथा - शक्ति पूजन कर विधि-पूर्वक अष्टोत्तर शत होम करे । 'वशिष्ठ -संहिता' में 'पञ्च- पल्लव' ये बताए हैं-

१ कटहल, २ आम्र, ३ अश्वत्थ, ४ वट और ५ वकुल । नव रत्न ये हैं-- १ मुक्ता, २ माणिक्य, ३ नीलकान्त, ४ गोमेद, ५ हीरक, ६ प्रवाल, ७ पद्मराग, ८ मरकत और ६ इन्द्रनील मणि ।

'निबन्ध' में लिखा है कि अलंकृत शिष्य को वेदी के ऊपर अग्नि के समीप बैठाकर प्रोक्षणी पात्रस्थ जल और शान्ति कुम्भ के जल पर अष्टोत्तर शत बार मूल मन्त्र का जप कर इसी जल से उसे अभिषिक्त करे । तदनन्तर शिष्य के मस्तक पर हाथ रखकर मूल मन्त्र प्रदान करे । फिर शिष्य ' नमोऽस्तु' से अक्षत द्वारा गुरु की पूजा करे ।

संक्षिप्त दीक्षा-पद्धति प्रकारान्तर-

अक्षत-युक्त शङ्ख को जल से भरकर उसमें दवता की पूजा करे । फिर शङ्खस्थ जल से शिष्य को मूल मन्त्र से आठ बार अभिषिक्त कर गुरु उसके मस्तक पर हाथ रख उसके कान में आठ बार मन्त्र का जप करे ।

'विश्वसार तन्त्र' में लिखा है कि चन्द्र या सूर्य ग्रहण के समय, तीर्थ स्थान में, काशी आदि सिद्ध क्षेत्र में या शिवालय में शिष्य को गुरु केवल मन्त्र बता दे, तो वह दीक्षा होती है। इन स्थानों में पूजादि की आवश्यकता नहीं होती । यह भी लिखा है कि अन्यान्य युगों में महा-दीक्षा, दीक्षा और उपदेश- ये तीनों ही विहित हैं, किन्तु कलियुग में केवल उपदेश करने ही से कार्य होता है ।